दूसरी चौकी तक जाते थे। अठारहवें मील पर, अर्थात् जिद्दा और मक्का के बीच में, एक पड़ाव है। सवेरे से सन्ध्या तक रेत के जहाज़ों ने सिर्फ़ १८ मील मैदान तै किया। अब सन्ध्या होते ही पहले दिन की यात्रा बन्द हुई। लोग ठहरे कहां? हिन्दूतीर्थ-यात्री समझते होंगे कि वहां पर पण्डों के मकान होंगे, या सराय होगी, या कोई धर्म्मशाला होगी, या सरकारी पड़ाव के लिए कोई ग्राम का बाग़ ही होगा। परन्तु नहीं, वहां पर न मकान थे, न सराय, न धर्म्मशाला, न किसी पेड़ की छाया। नीचे वही रेत, वही बालू, और ऊपर वही नीला स्वच्छ अरबी आकाश। हां, यात्रियों के ठहरने की जगह दो तीन हाथ लम्बी खजूर की डालियों की क़तारों से घिरी हुई थी।

रात होते ही पड़ाववाले बार बार पुकारकर कहने लगे "ख़बरदार, इस हद से बाहर कोई न निकलना, यदि बाहर निकलोगे तो हम तुम्हारे जान माल के ज़िम्मेदार नहीं। बाहर निकले और बद्दुओं ने तुम्हारी जान ली। ख़बरदार, लक्ष्मण जी के इस धनुषचिन्ह से बाहर पैर न बढ़ाना"। बद्दू लोग यहां के लुटेरे डांकू हैं। ऐसा सुना जाता है कि वे हज़रत मुहम्मद साहब की दासी के वंशधर हैं। इसीसे उनका बड़ा प्रताप है। वे किसीसे नहीं डरते। मैाका पाते ही मुसाफ़िरों को मार कर वे उनका सर्वस्व छीन लेते हैं। आपको जैसे मच्छर मारने में दुःख, क्लेश, परिश्रम, कुछ नहीं होता, बद्दू भी उसी तरह, जिसको चाहते हैं उसीको, मच्छर की तरह मार डालते हैं।

परन्तु चोर डाकू बहुधा कायर होते हैं। बद्दू भी बड़े कायर हैं। बहादुरी इनमें ज़रा भी नहीं। दूसरे पक्ष का भारी दल देखते ही वे भाग जाते हैं। एक बार एक पञ्जाबी हाजी को बद्दुओं ने घेर लिया। उसने अपनी कमर से रुपये निकाल कर सामने रख दिये और ललकार कर कहा कि कोई माई का लाल हो तो इसे मेरे सामने से ले जाय। बद्दू लोग रुपया न ले सके, परन्तु पञ्जाबी ने चार बद्दुओं को तुरन्त ही जहन्नुम की सैर करने भेज दिया। बाक़ी बद्दू उस समय तो भाग गये, परन्तु किसी और दिन उन्होंने पञ्जाबी को सोते हुए मार डाला।

दूसरे दिन सबेरा होते ही फिर कूच हुआ। इस दिन एक विशेष बात हो गई जिसका लिखना हम उचित समझते हैं। यात्रियों में से एक हैदराबादी सौदागर था। उसकी स्त्री और बम्बई के रहनेवाले दो नौकर भी उसके साथ थे। सौदागर के पास सात सौ अशर्फ़ियां थीं। उसने रात के समय अशर्फ़ियों को निकाल कर गिन डाला। परन्तु जैसे मिठाई का पता मक्खियों को लग जाता है उसी तरह अशर्फ़ियों का पता लुटेरों को लग गया। ऊंटवाले ही बद्दुओं के भाई बिरादर होते हैं। सौदागर के ऊंटवालों ने उसको लूट लेने का सब बन्दोबस्त कर लिया। दूसरे दिन, पौ फटने के पहले, कुछ रात रहते रहते, उन ऊंटवालों ने सौदागर को जगा कर कहा "आज बड़ी भीड़ होगी, बैठने कि लिये अच्छी जगह का मिलना कठिन हो जायगा, इससे आप कहें तो हम लोग ज़रा आगे ही कूच करदें।" सौदागर उनकी बातों में आगया और ऊंटों पर बैठ कर वे लोग आगे बढ़े। एक ऊंट की पीठ से लटकती हुई खटोलियों पर सौदागर और उसकी स्त्री सवार हुए, और दूसरे ऊंटपर दोनो नौकर। वे लोग कोई आध ही मील दूर गये होंगे कि ऊंटवाले ने रस्सी काट दी और सौदागर और उसकी बीबी, दोनो, ज़मीन पर जा गिरे। इतने ही में १०।१२ आदमी, जो वहीं पर छिपे हुए थे, उन पर जा टूटे और सौदागर की सब अशर्फ़ियां ले कर रफ़ू चक्कर हो गये। परन्तु आश्चर्य्य की बात यह हुई कि, चाहे जल्दी से हो चाहे और किसी कारण से, किसीकी जान उन्होंने नहीं ली। वे दोनों स्त्री-पुरुष वहीं पड़े रहे।

इस समय बम्बईवाले नैाकरों में से एक ने बड़ी बुद्धिमानी का काम किया। उस समय की बार-

दात उसकी समझ में आते ही वह अपने ऊंट पर से कूद पड़ा और उलटे पांव दौड़ता हुआ सरकारी चौकी पर पहुंचा। वहां उसने सिपाहियों से सब हाल बयान किया। सिपाही लोग तुरन्त उसके साथ डाकुओं के पीछे दौड़े। कुछ दूर जाकर सबों ने देखा कि लुटेरे आपस में हिस्सा बाँटने के लिये ख़ूब लड़ रहे हैं। फिर क्या था, सिपाहियों ने उनको जा घेरा और बिना किसी पूंछ पांछ के उन पर गोलियां चलाईं। १४।१५ डांकू देखते देखते यमलोक की तरफ़ कूच कर गये। यही अरब देश का न्याय है। कहां की गिरफ़्तारी, कहां की कचहरी और कहां के हाकिम! अरब के गरमागरम न्याय का यही नमूना है। सैादागर ने अपने न्यायकर्त्ताओं के कुछ अशर्फ़ियां पुरस्कार दीं और उस बहादुर नैाकर को सो रुपये दिये। अब, पाठक, सोचिए कि हाजियों के कैसी कैसी मुसीबतें रात दिन झेलनी पड़ती हैं।

अभी पर साल की बात है कि भूपाल की बेगम के बद्दुओं के एक दल ने मदीने जाते समय घेर लिया। बेगम ने कहा कि हम मदीने से लैाट कर तुम लोगों के बहुत सा धन देंगे। परन्तु मदीने से उन्होंने तुर्की सरकार के तार देकर बद्दुओं की बदमाशी की रिपोर्ट कर दी। वहां से उनकी रखवाली के लिये कड़ा इन्तज़ाम हुआ और कोई हज़ार आदमियों के एक क़ाफ़िले के साथ बेगम साहबा लैाटीं। पर, बद्दू लोग बदला लेने में कभी नहीं चूकते। उन्होंने भी बड़ा भारी दल बादल लेकर बेगम साहब के दल पर आक्रमण किया और बेगम साहब की सवारी पर, जो बहुत बढ़िया थी और ख़ूब सजी हुई थी, सैकड़ों गोलियां बरसाईं। परन्तु बेगम साहब ने पहले ही से उत्पात की आशङ्का करके अपनी सवारी छोड़ दी थी। साधारण यात्री की तरह एक और सवारी पर वे जा बैठी थीं, इसीसे उनको जान बच गई।

एक और कथा लिखकर हम बद्दुओं की चर्चा बन्द करते हैं। एक हिन्दुस्तानी मुसलमान किसी समय हज करने गया। उससे एक बद्दू ऊंटवाले से झगड़ा हो गया। वह झगड़ा इतना बढ़ा कि हाथाबाहीं की नैाबत आगई और हिन्दुस्तानी ने ऊंटवाले के मार डाला। मार तो डाला, परन्तु थोड़ी ही देर में उसके हृदय में अनुताप की ज्वाला धधक उठी। उसने सोचा कि मैं सात समुद्र पार होकर आया धर्म्म करने, पर सञ्चय किया मैंने अधर्म्म का। ज़रा सी बात पर तकरार करके मैंने एक आदमी की जान ले ली। अब मुझको इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए। यों सोच कर ढूंढ़ता ढूंढ़ता वह उस मृत ऊंटवाले के पिता के घर पर पहुंचा और उससे सब बातें ठीक ठीक कह कर बोला कि तू मुझे क्षमा कर। पाठक, सोचिये तो मृत जवान के बूढ़े पिता ने किस तरह अपने पुत्र-हन्ता को दण्ड दिया। वहां तो छुरी तलवार का चलना एक अत्यन्त प्राकृतिक और नित्य-नैमित्तिक घटनाओं में से है। बुड्ढे ऊंटवाले ने अपने युवा पुत्र के मरने का दुःख उतना न माना जितना शायद कोई दूसरा मानता। किन्तु हिन्दुस्तानी की सत्यनिष्ठा ने उसके हृदय पर बहुत बड़ा असर किया। बुड्ढे ने सोचा कि ऐसे सच्चे और धर्म्मात्मा मनुष्य को न छोड़ना चाहिए। इसलिये उसने उस हिन्दुस्तानी के अपने यहां से न लैाटने दिया। अपने बेटे के मारे जाने के कुछ ही दिन पहले उसने उसका विवाह कर दिया था। उसकी बहू इस समय घरही पर थी। बुड्ढे ने हिन्दुस्तानी के साथ अपनी बहू का निकाह करा दिया और उसीको अपना पुत्र बना लिया। वह हिन्दुस्तानी अब अरबी—अरबी ही नहीं, बद्दू—बन गया है, परन्तु लूट मार नहीं करता। ऊंट हांकता है, और अरबी, हिन्दुस्तानी आदि कई भाषायें जानने के कारण विदेशियों के लिए वह बहुधा द्विभाषिये का काम करता है।

मुसलमानी धर्म्मग्रन्थों में लिखा है कि ईश्वर को सन्तुष्ट करने के लिए हज़रत इब्राहीम ने

अपने पुत्र इस्माईल का बलिदान दिया था। जब इब्राहोम पुत्र को क़ुर्बान करने के लिये ले जाने लगे, उस समय इबलीस, यानी शैतान, ने इब्राहोम को बहुत फुसलाया और अनेक तरह से वह उसे समझाने लगा कि तेरा बाप तुझे मारने को लिये जाता है। परन्तु इस्माईल बड़े पोढ़े हृदय का धार्मिक था। उसने इबलीस की पाप की बातें न सुनीं। उसने कहा कि यदि यह शरीर, जिसका नाश एक दिन होना ही है, ईश्वर के कार्य्य में आ जाय, तो मैं अपना बड़ा भाग्य समझूंगा।

अस्तु, उसी क़ुर्बानी की प्रथा अब तक चली आती है। बक़राईद के दिन सब धार्म्मिक मुसलमान किसी पशु का बलिदान देते हैं। मक्के में मोना और मुज़दफ़ा नाम के दो स्थान हैं। उन्हीं के बीच में इब्राहोम ने बलिदान दिया था। वहीं सब हाजी लोग अपनी अपनी श्रद्धा के अनुसार अब भी पशु मारते हैं। बलि के पशुओं का मांस इतना इकट्ठा हो जाता है कि उस सबका लेने वाला नहीं मिलता। इसलिये यात्रियों के हट जाने पर उसे बद्दू उठा ले जाते हैं। उसे वे सुखाते हैं। फिर कूट पीस कर, आटे के साथ मिला कर वे उसकी रोटी पकाते हैं।

यहां से आगे चल कर एक स्थान अरफ़ात है। अरफ़ात मुसलमानों का प्रयाग है, क्योंकि यहां पर यात्री अपना सिर घुटवा डालते हैं। हिन्दू लोग पुरुष और प्रकृति को मानते हैं। मुसलमान आदम और हौवा को मानते हैं। आदम पृथ्वी में पहला पुरुष और हौवा पहली स्त्री थी। लोग कहते हैं कि इसी अरफ़ात ही में आदम और हौवा की पहली मुलाक़ात हुई थी। ईसाई भी इस पहले स्त्री-पुरुष के जोड़े को मानते हैं। पर वे कहते हैं कि आदम और हौवा ईडन के बाग़ में रहते थे। नहीं मालूम वह ईडन का बाग़ कहां है।

अरफ़ात के सामने एक पहाड़ी के नीचे पृथ्वी के सब देशों से आये हुए हाजियों की मजलिस होती है। सब लोग वहां मक्के की ओर मुंह किये हुए क़तार बाँध कर बैठ जाते हैं। रूम से आया हुआ एक मुसल्लिम पहाड़ो पर खड़ा होकर कुछ आराधना करता है—क़ुरान की कुछ आयतें वह पढ़ता है। उसके पीछे हज़ारों मनुष्य बैठकर उसकी आराधना सुनते हैं। सुनते क्या हैं, एक मनुष्य का स्वर, इतनी दूर से, सुनाई देना असम्भव है। परन्तु ख़बर आ जाती है कि आराधना आरम्भ हो गई, या अन्त हो गई। आराधना हो जाने पर तीन बार तोप दागी जाती है। बहुत लोग तो मुसल्लिम की सूरत तक को नहीं देख पाते। वह क्या कहकर आराधना करता है उसका सुनना तो दूर की बात है। सुनते हैं, इस बार १,००,००० यात्री वहां गये थे।

यहीं पर तीर्थ का असली कार्य—हज—ख़तम हो जाता है। इसके बाद मक्का-दर्शन। मक्का अरब में हिजाज़ सूबे का सबसे बड़ा शहर है। वह एक बलुई तराई में है। उसके आस पास पहाड़ भी हैं। शहर की लम्बाई कोई ३५०० क़दम और आबादी कोई ६०,००० है। मकान प्रायः पत्थर के हैं। कोई कोई मकान चार चार पाँच पाँच खण्ड के हैं। रास्ते चौड़े परन्तु बेहद मैले हैं। पुराने ज़माने में यहां पर एक अरबी का कालेज था; परन्तु अब वह नहीं है। कालेज की इमारत में अब लोगों के घर हो गये हैं। अब भी एक आध स्कूल वहां हैं। एक शफ़ाख़ाना भी है। यात्रियों के रहने के लिए अनेक मकान और नहाने के लिए अनेक हम्माम हैं। मक्का में सुलतान रूम का राज्य है और उनके अफ़सर भी वहां हैं। परन्तु सब नाम मात्र के लिए। मक्का के कर्ता धर्ता वहां के शेरिफ़ अर्थात् शरीफ़ ही हैं।

मक्का में महम्मद साहब का जन्मस्थान ज़ियारत की जगह है। और भी कई जगहें हैं जहां यात्री लोग बहुत भक्ति-भाव से जाते हैं। पर मक्का में सबसे अधिक प्रसिद्ध जगह वहां की विशाल मसजिद है। मुसल्मानी धर्म्म फैलने के पहले भी मक्का पवित्र तीर्थ माना जाता था। उस समय अरब में जो लोग रहते थे वे मूर्तिपूजक थे। जहां पर

यह मसजिद है, वहाँ पुराने मूर्तिपूजकों के मन्दिर इत्यादि थे। उनके भीतर की मूर्तियों को मुसल्मानों ने तोड़ डाला। इसी मसजिद के ग्रहाते में काबा नाम की एक जगह है। उसे मुसल्मान बहुत पवित्र समझते हैं। यहां पर संगे-ग्ररबाद नामक एक काले पत्थर का टुकड़ा है। यात्री लोग उसे चूमते हैं ग्रैार हिन्दुग्रों की तरह उस स्थान की प्रदक्षिणा करते हैं। अँगरेज़ ग्रन्थकारों का मत है कि यह पत्थर पहले मूर्तिपूजकों की किसी मूर्ति के रूप में था। ६८३ ईसवी में ग्राग लग जाने के कारण वह कई जगह से टूट गया था। इससे वह एक चाँदी के बंद से बाँध दिया गया है। मुसल्मानों का कथन है कि इस पत्थर को जिबराईल ने हज़रत इब्राहीम के दिया था। मक्का की इस मसजिद में काबा के छोड़कर ज़मज़म नाम का कुग्रां भी एक प्रसिद्ध स्थान है। इस मसजिद की कई दफ़ा मरम्मत हुई है। हज के वक्त मक्के में कोई एक लाख के क़रीब यात्री इकट्ठे होते हैं।

जो लोग चाहते हैं वे मक्का से जिद्दा लैाटकर, फिर जहाज़ पर बैठ, उत्तर के मदीने को यात्रा करते हैं। रेल बन जाने पर मक्का ही से सीधे उत्तर की तरफ़ रेल पर बैठ कर मदीने जाना सहज हो जायगा। रेल बन रही है।

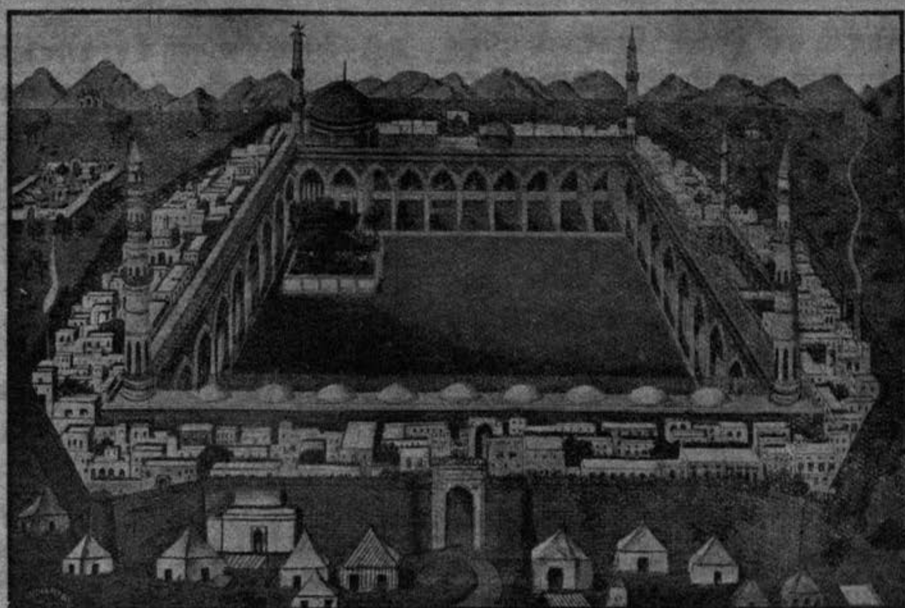
ग्ररब में मदीना भी एक बड़ा शहर है। वह बिलकुल मैदान में है; परन्तु इसके भी इर्द गिर्द कुछ दूर पर पहाड़ियां हैं। पहाड़ियों से नदियां भी निकली हैं। इसके पास के पहाड़ ज्वालामुखी हैं। १२६६ ईसवी में इनमें से एक पहाड़ का स्फोट हुग्रा था ग्रैार गली हुई ईंट, पत्थर ग्रैार धातुग्रों की ग्रग्निमय धारायें मदीना के पास तक बह ग्राई थीं। मदीना के चारों तरफ़ शहरपनाह है। ग्राबादी कोई बीस हज़ार के क़रीब है। जो दशा हमारे यहां प्रयाग, काशी ग्रैार गया ग्रादि तीर्थों की है, वही मक्का ग्रैार मदीना की भी है। मदीने में हज़ारों ग्रादमी बे हाथ पैर हिलाये यात्रियों के मत्थे मज़े उड़ाते हैं। यहां पर एक क़िला है। उसमें तुर्की फ़ौज रहती है। मकान यहां भी सब पत्थर ही के हैं। गलियां चैाड़ी कम हैं, पर साफ़ हैं।

मदीना में महम्मद साहब का रैाज़ा है। महम्मद, ग्रबूबकर, उमर ग्रैार फ़ातिमा इत्यादि के मक़बरे सब एक ही इमारत में हैं। मदीना का महत्व इसी रैाज़े के कारण है। पहले यह एक मामूली इमारत थी। जबसे वह बनी तबसे दो दफ़े वह फिर से नई बनाई गई। पर १२५६ ईसवी में वह जलकर बिलकुल ही बरबाद हो गई। इससे तीसरी दफ़ा उसे बनाना पड़ा। इमारत बहुत ग्रच्छी है। जो लोग महम्मद के साथ मक्के से मदीने भग गये थे, उनकी भी क़बरें शहर के पश्चिम, कुछ दूर पर हैं। इन मक़बरों की हालत बहुत ख़राब हो गई थी; परन्तु ग्रब किसी किसी की मरम्मत हो गई है।

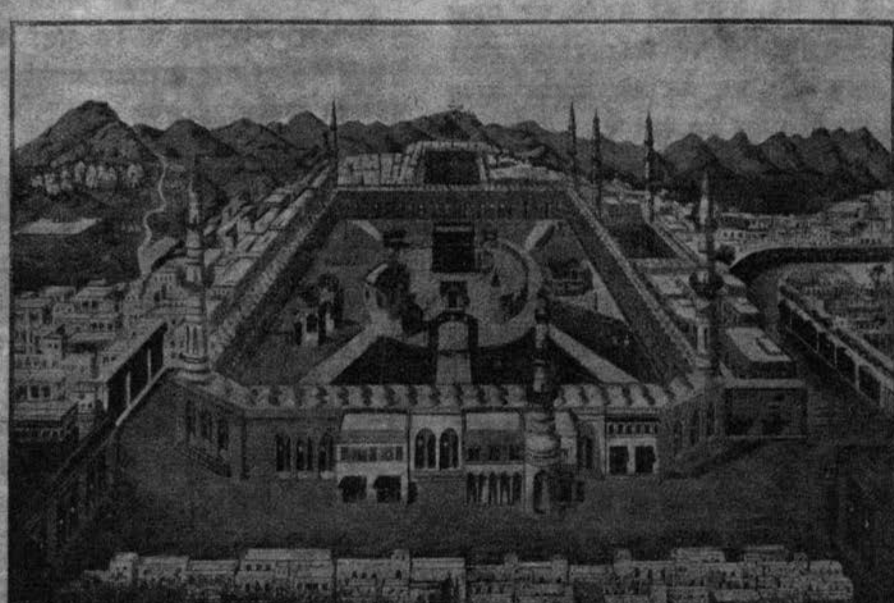
मदीने से उत्तर करबला है। करबला शीया सम्प्रदायवालों का तीर्थ है। हमने एक ग्रङ्गरेज़ी मासिक पत्र में पढ़ा है कि वहां पर धार्म्मिक मुसल्मान छुरा मार मार कर ग्रपने शरीर से ख़ून बहा कर क़ुर्बानी करते हैं।

कुछ ग्रैार भी उत्तर की ग्रोर जरूसालम है। यह हज़रत ईसा का जन्मस्थान है। परन्तु मुसल्मान भी वहां बहुत जाते हैं। हमारे हाजी जी भी वहां जाने की इच्छा रखते थे। पहले उनके भाई ने भी उनके साथ जाना चाहा था। परन्तु छुट्टी न मिलने से वे इस साल नहीं जा सके। इसीलिए हाजी जी ने ग्रकेले इतनी दूर की यात्रा करना उचित न समझा। ग्रपने भाई के साथ, फिर, इसी ग्रगले दिसम्बर के महीने में, वे मक्का की यात्रा करनेवाले हैं।

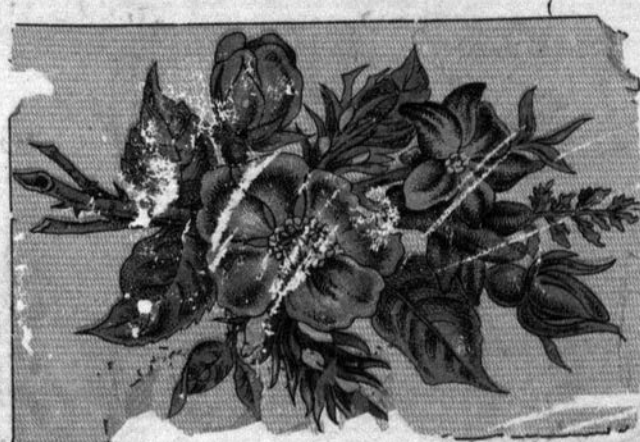
पार्वतीनन्दन।



मदीना ।



मक्का ।





सम्राट सातवें एडवर्ड।

महारानी एलेक्ज़ण्ड्रा। श्रीमान राजपौत्र।

श्रीमती प्रिंसेस आफ़ वेल्स। श्रीमान प्रिंस आफ़ वेल्स।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] दिसम्बर, १९०५ [संख्या १२

विविध विषय।

इस अङ्क के साथ सरस्वती का छठा भाग समाप्त होता है। नियमानुसार सरस्वती की हर संख्या में ३२ पृष्ठ, अर्थात् साल भर में ३८४ पृष्ठ होने चाहिएं। परन्तु गत वर्ष का पाँचवां भाग ४४४ पृष्ठों में समाप्त हुआ। अर्थात् ग्राहकों में उसी मूल्य में ३२ पृष्ठ की जगह ३७ पृष्ठ, हर महीने, पढ़ने को मिले। इस साल सरस्वती की पृष्ठ-संख्या ग्रौर भी बढ़ा कर ५०० के क़रीब कर दी गई। अर्थात् हर महीने, ३२ की जगह ४० से भी अधिक पृष्ठ ग्राहकों को मिले। पर मूल्य पूर्ववत् वही बना रहा। इसके सिवा चित्र, छपाई, काग़ज़ ग्रौर रूप-रङ्ग में भी विशेषता रही। हमें आशा है, सरस्वती के सहायकों ने इस बात को पसन्द किया होगा। इस साल जैसे लेख इसमें निकले, उसके विषय में हम यदि कुछ कहें तो हमारा कहना सर्वथा अनुचित होगा। सरस्वती पर कृपा करनेवाले उसके ग्राहक ग्रौर पाठकही इस बात का विचार करेंगे।

अपने अनुग्रहरूपी सलिल से सरस्वती को सिञ्चन करनेवाले ग्राहकों की कृपा ग्रौर सरस्वती के अध्यवसायशील ग्रौर उत्साही मालिकों के यत्न से इस साल सरस्वती की दशा पहले से बहुत अच्छी रही। उसका प्रचार यथेष्ट बढ़ा, यहां तक कि यदि सब बातें पूर्ववत् बनी रहीं तो अब इसके अकाल-कवलित होने का कोई डर नहीं जान पड़ता। पर हिन्दी के प्रेमियों से हमारा सादर निवेदन है कि वे इसे, अगले वर्ष, कुछ ग्रौर भी विशेष कृपा की दृष्टि से देखें जिसमें अब तक इसके मालिकों को जो क्षति हुई है वह पूरी हो जाय। हिन्दी उनकी मातृभाषा नहीं; तथापि उसकी हीनावस्था के कारण दयाद्रवित होकर, सरस्वती के द्वारा, उसकी सहायता करने का उन्होंने जो निश्चय किया है उसके ख़याल से हिन्दीभाषा-भाषी सज्जनों का यह कर्तव्य है कि वे उनके घाटे को पूरा कर दें।

इस साल एक विशेष बात यह हुई कि सरस्वती के टाइटिल पेज, अर्थात् आवरण, पर से काशी की सभा का नाम निकल गया। इस बात की कैफ़ियत सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी है।

इससे, उस विषय में, अब और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।

किसी बात का वादा करके उसे पूरा न करना हम बहुत बुरा समझते हैं। इसलिए हम पहलेही से यह नहीं कहना चाहते कि अगले वर्ष सरस्वती में कैसे लेख प्रकाशित होंगे, या उसमें किस किस बात की उन्नति होगी। सम्भव है, किसी अनिवार्य्य कारण से हमारा अभिवचन किसी अंश में भङ्ग हो जाय। पर इतना हम अवश्य कहते हैं कि सरस्वती को पहले से भी अधिक उपयोगी और मनोहर बनाने की चेष्टा करने में यथासम्भव किसी तरह कमी न होने पावैगी।

श्रीनगर (पुरनिया) के नरेश श्रीयुक्त राजा कमलानन्दसिंह की सरस्वती बहुत कृतज्ञ है। उन्होंने इस साल सबसे अच्छा लेख लिखनेवाले को जो एक सोने का पदक देने का निश्चय किया है, उसका नतीजा शीघ्रही सरस्वती में प्रकाशित होगा।

***

इस वर्ष दिसम्बर के अन्त में जो कांग्रेस, अर्थात् जातीय महासभा, बनारस में होनेवाली है, उसके सभापति माननीय अध्यापक गोपाल। कृष्ण गोखले, बी० ए०, सी० आई० ई०, हुए हैं। कांग्रेस के साथ जो प्रदर्शिनी कुछ साल से हुआ करती है, उसके सम्बन्ध में, इस साल, कला-कौशल अर्थात् शिल्प या कारीगरी-सम्बन्धिनी एक औद्योगिक सभा भी होगी। उसका सभापति होना श्रीयुक्त रमेशचन्द्र दत्त, सी० आई० ई०, ने स्वीकार किया है। हर साल की तरह इस बार भी एक सामाजिक जमाव होगा; उसके सभापति का आसन पण्डित ज्वाला-प्रसाद शङ्खधर, एम० ए०, को मिला है! शिल्प-कला-सम्बन्धिनी सभा का होना, इस साल, एक नई चीज़ होगी। इस सभा में, सुनते हैं, कारीगरी आदि के विषय में कई उपयोगी लेख पढ़े जायँगे।

***

माननीय विचारपति श्रीसारदाचरण मित्र ने एक लिपि-विस्तार-परिषद् की नियमावली हमारे पास कृपापूर्वक भेजी है। हमने उसे अच्छी तरह देखा, सब नियम उपयुक्त और उचित जान पड़ते हैं। इन नियमों के अनुसार कुछ समय तक कार-रवाई होने पर यदि संशोधन की आवश्यकता जान पड़े, तो पीछे से उचित संशोधन हो सकैगा। माननीय मित्र महाशय ने परिषद् की स्थापना के विषय में एक पत्र भी हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती, तामील, तैलङ्गी, कनारी, नैपाली और गुरमुखी भाषा में भेजा है। यह पत्र इन भाषाओं के जानने-वालों के पास परिषद् का सभासद होने के लिये भेजा जायगा। नागरी अक्षरों में लिखे हुए इन पत्रों को भाषाओं के पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। नागरी अक्षरों की योग्यता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। हम इस परिषद् के सब प्रकार हितचिन्तक हैं, और आशा करते हैं कि इसे किसी समय काम-याबी होगी। चाहै देर में हो चाहै जल्द।

***

एक सज्जन ने हमको एक पत्र भेजा है। आप लिखते हैं—"आपको एक ख़ुशख़बरी सुनाते हैं। सरस्वती की दसवीं संख्या में आपने काशी की सभा की 'खोज' के सम्बन्ध में जो नोट लिखा, उसका ख़ूब असर हुआ मालूम होता है। उस नोट के निकलने के पाँचही सात दिन बाद सभा ने एक बाबू साहब को बुँदेलखण्ड रवाना किया, इस लिए कि वहां जाकर खोजी गई पुस्तकों की वे नोटिसें लिखैं। पर, सात आठ महीने पहले जो साहब पुस्तकों और पुस्तकालयों का पता लगाने गये थे, वे ख़ुदही बहुत सी नोटिसें ले आये थे। मालूम नहीं उनका क्या हुआ। क्यों सभाने उनसे यह बेक़ायदे काम कराया? और क्यों उसने अब तक दूसरे आदमी को बुँदेलखण्ड भेजने की ज़रूरत नहीं समझी? आपके नोट के लिए सभा ही के सब मेम्बरों को नहीं, किन्तु हिन्दी-साहित्य के सभी शुभचिन्तकों को आपका कृतज्ञ होना चाहिए"। यदि इस पत्र में लिखी हुई बात सच है तो जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। पर हमारी राय तो यह है कि

इस काम के लिए दो आदमियों को भेजना व्यर्थ ख़र्च बढ़ाना है।

***

बुख़ार नापने का थर्म्मामीटर बने बहुत दिन हुए। उसे बहुधा सभी पढ़े लिखे और समर्थ आदमी अपने घर में रखते हैं। अब नाड़ी की परीक्षा के लिए भी एक यन्त्र बन गया। उसका नाम है "स्फायग्मोग्राफ़"। उसके आविष्कर्ता कोई मरे साहब हैं। इस यन्त्रपर एक काग़ज़ का टुकड़ा रहता है और एक पेन्सिल भी रहती है। जब वह नाड़ी पर लगा दिया जाता है तब नाड़ी की गति के अनुसार काग़ज़ पर टेढ़ी, सीधी, छोटी बड़ी रेखायें खिंच जाती हैं। उन्हींको देखकर डाकृर या वैद्य रोग को पहचान सकते हैं। इस देश में भी अब इस यन्त्र का प्रचार हो चला है।

***

काशी से "मित्रगोष्ठी-पत्रिका" नाम की एक मासिक पुस्तक कोई डेढ़ वर्ष से निकलती है। इसमें बहुधा बहुत अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। इसकी संक्षिप्त-आलोचना भी सरस्वती की किसी संख्या में हो चुकी है। कुछ दिन से इस पत्रिका में अजब तरह की संस्कृत-वाक्य-रचना स्थान पाने लगी है। उदाहरण—(१) इसको भाद्र-मास की संख्या के १५० पृष्ठ में लिखा है। "स खलु महोदयः बङ्ग-भाषायाः महदुन्नतिः संसाधिता"। उन्नतिः संसाधिता केन? स महोदयः! "तेन महोदयेन" शायद ग़लत होता! (२) इसी पृष्ठ में, थोड़ी दूर आगे, लिखा है—"किमपि पाक्षिकं संस्कृतपत्रं * * * प्रचलिष्यतीति। परं याव-दस्य ग्राहकाणामर्द्धसाहस्रं न सम्पद्यते तावन्न प्रचलिता भवेत् अतस्तद्रसिकैः तूर्णं तस्य सम्पा-दकः पण्डितश्रीरामलालशर्म्मा विज्ञापनीयः"। प्रचलिता भवेत् का? पाक्षिकं संस्कृतपत्रम्! क्या काशी में किसी नये संस्कृत-व्याकरण का अवतार या अविष्कार हुआ है? अथवा, सम्भव हैं, दृष्टिदोष से ऐसे प्रयोग छप गये हों। परन्तु दूसरे उदाहरण में दृष्टिदोष हो सकता है, पहले में नहीं। काशी संस्कृत-विद्या का प्रधान पीठ है। वहीं संस्कृत की ऐसी दुरवस्था देख कर किसे दुःख न होगा?

***

बंगाले में लड़कियों के मदरसों की एक इन्स्पेक्ट्रेस हैं। आपका नाम है मेरी, ए० सी०, मूराट। कुछ दिन हुए आपके नाम से बँगला में एक छोटी सी पुस्तक छपी थी। उसका नाम है "सूची-शिल्प"। उसका हिन्दी-अनुवाद भी अब छप गया है। इसको हमने पढ़कर देखा तो बहुत लाभकारी पाया। आर्मी प्रेस, जुही, कानपुर, के मालिक ने इसकी बहुत सी कापियां मँगा कर अपने यहां रक्खी हैं। किताब का दाम आठ आना है। काग़ज़ और छपाई सब अच्छी है। इसमें कोट, कमीज़, कुर्ता, टोपी, मोज़ा, वग़ैरह सीने की शिक्षा बहुत ही सीधी सादी भाषा में दी गई है। जगह जगह पर अच्छी अच्छी तसवीरें हैं। बेलबूटे बनाना, रफ़ू करना, कपड़ों को काटना, छांटना और तरह तरह की सिलाई का भी वर्णन है। यह किताब स्त्रियों और लड़कियों के बड़े काम की है। विशेष करके इस समय, जब कि स्वदेशी कपड़े और स्वदेशी चीज़ों को काम में लाने की धूम है, यह किताब अनमोल है।

***

कानपुर के उर्दू-मासिक-पत्र "ज़माना" की अजीब समझ है। आप देवनागरी अक्षरों को उर्दू, फ़ारसी और तामील इत्यादि लिखने के लायक़ नहीं समझते। आप देवनागरी में लिखी जानेवाली संस्कृत भाषा की, इस समय, उन्नति करने की भी ज़रूरत नहीं समझते। आप, अपने सितम्बर १९०५ के अङ्क में, लिखते हैं—

हर कस बख़याल ख़ेश ख़ब्ते दारद। अहले बनारस को यह सूझ गई है कि संस्कृत तालीम को फ़रोग़ देने से हिन्दुस्तान फिर पुरानी अज़मत के ज़ीने पर चढ़ जायगा।

माहे गुज़श्ता में जब जनाब लफ़टिनेन्ट गवरनर वहां तशरीफ़ ले गये तो इस तजवीज़ पर बड़ी सरगरमी से बहस की गई। और फ़ैसला हुआ कि संस्कृत कुतबख़ाना के क़ायम करने, तुलबा को वज़ायफ़ देने और उनके लिये बोर्डिंग हाउस तामीर करने में ढाई लाख रुपया दरकार होगा। उसी वक़्त चंद ख़रे असामियों ने पचहत्तर हज़ार रुपया जमा करके अपने दरियादिली का सबूत भी दे दिया। हम इन असहाब की फ़ैयाज़ियों के मोतरिफ़ हैं। मगर उसके साथ ही यह कहना ज़रूरी समझते हैं कि अगर यह सरमाया, यह दिमाग़ और यह सरगरमी सनअती (कारीगरी) तालीम के लिए सर्फ़ की जाती तो मुल्क को बेइंतहा फ़ायदा होता। हम नहीं समझते कि संस्कृत तालीम की अशाअत से इन असहाबों ने क्या फ़ायदा सोच रक्खा है। क्या यह ख़याल है कि यह कोशिशें इस ज़बान को सारे हिन्दुस्तान की आम ज़बान बना देगी (? देंगी)। अगर ऐसा ख़याल है तो बिलकुल बातिल है। हां अगर अपनी क़दीमी ज़बान की महाफ़िज़त मंजूर है तो एक हद तक दाद देने के क़ाबिल है। ताहम जिन मामलात पर ज़िंदगी व मौत का दारोमदार है पहले वह तवज्जह के मुसतहक़ हैं। ऐसे ऐसे मसायल सोसाइटी के ज़ेवर हैं। पहले रोज़ी की फ़िक्र कीजिये। ज़ेवर फिर बन रहेंगे। क्या यह अहले बनारस के लिये बायस नंग नहीं है कि अमेरिका से एक लायक़ व फ़ायक़ प्रोफ़ेसर सनअती तालीम की नीयत से आवे और कोई सामान न देख कर शिकस्ता दिल वापस जावे। माना कि यह कोशिशें एक ग़ैर मज़हब वाले शख़्स ने की थीं। मगर ऐसी कोशिश बिला क़ैद मज़हबी व मिल्लत के हमारी क़दरदानी व अयानत की मुसतहक़ हैं।

संस्कृत की उच्च शिक्षा और उसके द्वारा पुरातत्व-सम्बन्धी अनुसन्धान से लाभ होगा—यह ख़याल बनारसवालों ही का नहीं है, किन्तु जनाब लफ्टिनेन्ट गवर्नर साहब का भी है। पर "ज़माना" की राय में वह सब "ख़ब्त" है। अलीगढ़ में अरबी की उच्च-शिक्षा का जो प्रबन्ध हो रहा है वह शायद आपकी राय में बहुत बड़ी बुद्धिमानी का काम होगा। "ज़माना" का कथन है—"हम नहीं समझते कि संस्कृत तालीम की अशाअत से इन असहाबों ने क्या फ़ायदा सोच रक्खा है?" विनय है कि बनारसवालों ने संस्कृत से वही फ़ायदा सोच रक्खा है जो उर्दू की सेवा से अपना जन्म सफल करनेवालों ने फ़ारसी और अरबी से सोच रक्खा है। अथवा जो योरप और अमेरिका वालों ने ग्रीक, लैटिन, हिब्रू आदि पुरानी भाषाओं के सीखने से सोच रक्खा है।

विदेशी हाकिम संस्कृत की तरक़्क़ी का पक्षपात करें; पर स्वदेशी उसका विरोध! शिव शिव! विदेशी विद्वान् संस्कृत पढ़कर जर्मनी, फ़्रांस और इँगलैण्ड में बैठे बैठे उसका यशोगान करें; पर स्वदेशी युवक, जिन्होंने भूल कर भी संस्कृत का मुँह नहीं देखा, कहें, उसको तरक़्क़ी की कोई ज़रूरत नहीं! एशियाटिक सोसायटी के प्रयत्न से तैयार हुई संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकों की सिर्फ़ नामावली ही जिसने देखी है, वह भी कह सकता है कि संस्कृत का साहित्य अतिशय विस्तृत और अतिशय श्रीसम्पन्न है। उसमें अनेकानेक ग्रन्थरत्न छिपे हुए पड़े हैं; उनके तथा पुराने शिलालेख आदि के अध्ययन और परीक्षण से पुरातत्व-सम्बन्धी अनन्त नई नई बातें मालूम हो सकती हैं। पर, जिसके पूर्वजों ने संस्कृत-साहित्य को इतना उन्नत बनाया, उसका यह भी न जानना कि संस्कृत की उच्च शिक्षा से क्या लाभ होगा, बड़े अफ़सोस, बड़े खेद और बड़ी लज्जा की बात है! "ज़माना" की राय में यह वक़्त संस्कृत को तरक़्क़ी देने का नहीं। फिर उसको तरक़्क़ी का वक़्त कब आवैगा? जब उसका बचा बचाया साहित्य प्रायः समूलही ध्वंस हो जायगा! "ज़माना" संस्कृत की उच्च शिक्षा के ख़िलाफ़ है। इसलिए ऐसी शिक्षा उसकी राय में मनुष्य के लिए सिर्फ़ एक तरह का ज़ेवर है। उससे आदमी की रोज़ी नहीं चल सकती। रोज़ी चल सकती है कल, कारख़ाने और कारीगरी आदि की शिक्षा से। इसलिए, इस समय, रोज़ी देनेवाली शिक्षा ही की ज़रूरत है। उसीके

लिए लोगों के रुपया ख़र्च करना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि ताता के दिये हुए रुपये से जो उच्च शिक्षा का वैज्ञानिक कालेज बननेवाला है, वह न बनै; लखनऊ में मेडिकल कालेज खोलने का जो प्रबन्ध हो रहा है, वह रोक दिया जाय; लड़कों के स्कूल ग्रैार कालेजों में जो इतिहास, भूगोल, भाषा ग्रैार दर्शन-शास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती है, वह उठा दी जाय! ग्रैार तरह की उच्च शिक्षा के लिए देश में अनेक विद्यालय जो खुले हुए हैं, वे बने रहें; पर संस्कृत की उच्च शिक्षा के लिए एक भी विद्यालय न होने पावै! क्यों? इसलिए कि संस्कृत हिन्दुस्तान की पुरानी पवित्र भाषा है; इसलिए कि संस्कृत के भीतर हिन्दुओं का पुराना ग्रैार पूज्यतम ज्ञान धन भरा हुआ है; इसलिए कि संस्कृत सीखने से हिन्दू ग्रैार हिन्दुस्तान की पुरानी कीर्ति की रक्षा हो सकती है। ग्रैार इनके लोप होने से बचाने की कोई ज़रूरत नहीं? याद रखिए यह राय एक हिन्दुस्तानी हिन्दू की है; किसी विदेशी की नहीं!

***

इस समय हिन्दुस्तान में ऐसे अनेक विद्यालय हैं जहां ऊंचे दरजे की शिक्षा दी जाती है; पर वहां कारीगरी की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं। उनके ख़िलाफ़ "ज़माना" के पास एक शब्द तक नहीं। पर संस्कृत की जिस उच्च शिक्षा के लिए आज तक कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं हुआ, उसका नाम सुनते ही आप बेतरह बेज़ार हो उठे, ग्रैार कारीगरी, कारीगरी, पेशा, पेशा, चिल्लाने लगे। हमारी प्रार्थना है कि दुनिया में सबको रुचि एक सी नहीं होती। किसीकी प्रवृत्ति किसी तरफ़, किसीकी किसी तरफ़। कोई कारीगरी के पसन्द करता है; कोई विज्ञान के; कोई पुरातत्व के, कोई साहित्य के। कारीगरी बुरी नहीं; पर रुचि भी कोई चीज़ है? यदि अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार सबकी उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो अपने अपने विषय में सबके अपनी अपनी विद्वत्ता दिखलाने का मौक़ा मिलै ग्रैार उससे लाभ भी हो। जिसे अख़बार-नवीसी पसन्द है, उसे यदि कोई ज़बरदस्ती लोहार का काम दे दे, तो उसमें उसे कहां तक कामयाबी हो सकती है? पर "ज़माना" की राय है कि प्रवृत्ति ग्रैार निवृत्ति का ज़रा भी ख़याल न करके सब लोग पकड़ कर कारीगरी के जुए में जोत दिये जायँ! ख़ैर इतनी ही है कि बनारसवासी ग्रैार लेफ़्टिनेंट गवर्नर साहब आपकी आँखों नहीं देखते।

***

चार पाँच महीने से पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी-साहित्य-विषयक लेखों की चर्चा हो रही है। इस विषय में वाद-प्रतिवाद-रूप कई लेख "इण्डियन पीपुल" ग्रैार "ऐडवोकेट" में निकले। शुक्लजी के पहले अंगरेज़ी लेख का वह अंश हमने विशेष आक्षेप-योग्य नहीं समझा था जिसमें उन्होंने दूसरों की किताबों की नक़ल, या उनका अनुवाद, करके अपने नाम से प्रकाशित करनेवालों की निन्दा की थी। पर "मोहिनी" में मिर्ज़ापुर के एक मनुष्य का जो लेख पीछे से छपा, उसे पढ़कर हमको बहुत परिताप हुआ। उसमें भारतमित्र ग्रैार बाबू काशीप्रसाद पर अशिष्ट, अनुचित ग्रैार कठोर शब्दों में आक्रमण किया गया। साहित्य-समालोचना करने का सबको अधिकार है; उससे फ़ायदा भी है; पर किसीके कामकी बेजा आलोचना करना अच्छा नहीं। ऐसी आलोचना में यदि गर्हित शब्दों की अधिकता हो तो ग्रैार भी अफ़सोस की बात है। अब हमें एक छोटी सी छपी हुई पुस्तक मिली है। उसमें "मनस्ताप" नामक एक लेख है। उस लेख में शुक्लजी ने बाबू काशीप्रसाद से अपने इस अनुचित आक्रमण को क्षमा माँग ली है। यह बहुत अच्छा हुआ।

श्रीयुक्त सत्यव्रत सामश्रमी ।

इसमें सन्देह नहीं है कि पृथ्वी का नाम 'वसुन्धरा' ठीकही रक्खा गया है। भारतवर्ष की इस गिरी हुई दशा में भी इस पुण्यभूमि में कितने ऐसे अमूल्य रत्न पड़े हैं जिनसे उपर्य्युक्त नाम अन्वर्थ या सार्थक है। आज जिस महामहिम का चरितगान मैं आपको सुनाना चाहता हूं वह श्रीयुक्त प्रातस्मरणीयचरित श्रीसत्यव्रत सामश्रमी जी हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन विद्योपार्ज्जन तथा अन्यान्य अत्यन्त गूढ़ गूढ़ विषयों के पता लगाने में बीता है और अद्यावधि इसीमें बीत रहा है। मैं इसे अपना पूरा कर्त्तव्य समझता हूं कि इनकी सुन्दर जीवनी को छिपाकर न रक्खूं।

देखने में आता है, और संसार की गति भी विचित्र है, कि अनेक गुणों के आधार महात्मा-जन, अपनी ज़िन्दगी में अपने अर्ज्जित यश का सुख अनुभव नहीं कर सकते हैं। यह अवश्य बड़े दुःख की बात है। इसी आपत्ति में पड़कर महाकवि श्रीभवभूति कहता है—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्म्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

हां, ऐसे भी कई बड़े आदमी हुए हैं जिन्होंने अपने जीवनकाल ही में अपनी कीर्त्ति देख ली है। परन्तु अधिकांश ऐसेही महात्मा हुए हैं जिनके विषय में हम कम जानते हैं। प्रोफ़ेसर जे० एस० ब्लाकी कहते हैं—"Great men are amongst those of whom the world hears least." फिर भी, काल के निरवधि होने से इनका यश प्रकट होता ही है। और मृत्यु का भी यह गुणही है कि वह इसे यथायथ प्रकट करे; जैसा कि एक कवि कहता है—

"स दोषैर्मुक्तो वा भवतु कलुषी कोऽपि पुरुषः
सदा कान्तैः पुण्यैर्वितरतु गुणैः प्रीतिमथवा।
अकीर्तिर्वा तस्य प्रकटितदशास्त्वेव किमिति
तव श्लाघा मृत्यो! यदिहमहिमानं वितनुषे॥"

अस्तु। यह आपत्ति किसी अंश में श्रीयुक्त सामश्रमीजी को स्पर्श न करे, इसीलिए यह मेरा लघु यत्न है। मैं इसे प्रथमही स्वीकार कर लेता हूं कि इन महात्मा के विद्यादि गुणों की समीक्षा करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। मैं इनका जीवनचरित थोड़े में सुनाऊंगा।

श्रीमान् सामश्रमीजी का जन्म संवत् १८८८, ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी तिथि को पटने में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीरामदास वाचस्पति और पितामह का नाम श्रीरामकान्त विद्यालङ्कार था। श्रीरामकान्त विद्यालङ्कार कलकत्ते में सुप्रीम कोर्ट के जज थे। श्रीरामदास वाचस्पति ने भी गवर्नमेन्ट के आधीन कई प्रतिष्ठित पद पाये थे और बड़ी योग्यता से कार्य्य किया था। विद्या इनके घर में मानों अनादिकाल से चली आती है। घर में सभी विद्वान् होते आये हैं। और हर किसी ने एक न एक अद्भुत काम किया है। श्रीरामदास वाचस्पति एक अच्छी ज़मींदारी के मालिक थे और सम्पत्तिमान् भी थे।

श्रीमान् सामश्रमीजी का पहला नाम श्रीकालिदास है। परन्तु यह नाम बहुत दिनों तक न रह सका। ये लड़कपनही से सत्यशील और तेजस्वी थे। एक समय की बात है, कि जब यह ४,५ वर्ष के थे, तब इन्होंने अपने पिता के बाग़ में, एक गुलाब का फूल, जिसे इनके पिता ने, एक शोभा की वस्तु जानकर, रक्षित रक्खा था, तोड़ लिया। पिता को यह बात मालूम न थी कि कालिदास ने ही इसे तोड़ा है। अतः वे अपने नौकरों पर क्रोधित हुए। पर बालक कालिदास ने झट अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इस पर पिता ने प्रसन्न होकर इनके गुणानुरूप इनका "सत्यव्रत" नाम रक्खा।

वङ्गदेश में वैदिक पाठशाला का नाम निशान पहले न था। बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुर, तथा, वर्द्धमान के राजा ने, और, और भी कई मनुष्यों ने,

बहुत यत्न किये कि श्रीकाशी से वङ्गदेशीय पण्डितों को वेद पढ़ा कर तैयार करें; और उन्हें वङ्गदेश में अध्यापक नियत करके, वहां वेद की शिक्षा का विस्तार करें; परन्तु उनका यत्न व्यर्थ हुआ। सभी हताश हुए। श्रीरामदास वाचस्पति को, अपने प्रियपुत्र को वेदशिक्षा देने की, अत्यन्त उत्कट इच्छा थी। प्रारम्भ ही से वह इस यत्न में थे कि किसी प्रकार से सत्यव्रत वेद का भारी पण्डित हो। जिस ज़माने की बात मैं लिखता हूं, उस ज़माने में काशी की पण्डितमण्डली वङ्गदेशीयों को वेदशिक्षा देना बुरा समझती थी। अतः प्राथमिक शिक्षा देकर श्रीरामदास वाचस्पति ने अपने पुत्र को वेद पढ़ाने का विचार किया। जब सत्यव्रतजी ७ वर्ष के थे, तब इनके पिता पटने से काशी चले आये। विद्यारम्भ इनका पाँचवें वर्ष में हुआ। इनके पिता ने पण्डित मथुरानाथ शिरोमणि नामक एक अच्छे विद्वान् को, इनको पढ़ाने के लिए, नियुक्त किया। ८ वर्ष की अवस्था में सत्यव्रतजी ने साहित्य, गणित और भूगोल की छात्रवृत्ति परीक्षा पास की। इसके बीच में चाणक्यनीति और अमरकोष हो गये थे। आठवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत हुआ। और सिद्धान्तकौमुदी का प्रारम्भ भी हुआ। ९॥ वर्ष के वय में सिद्धान्तकौमुदी समाप्त हो गई। ये सिद्धान्तकौमुदी, श्रीगौडस्वामी के यहां, अहल्याबाई के घाट पर, और सामवेद पण्डित नन्दराम त्रिपाठी के यहां पढ़ते थे। ये दोनों विद्वान् उस समय के अद्वितीय पण्डित थे। श्रीगौडस्वामी, स्वर्गवासी श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती के गुरु भी थे। १०॥ वर्ष के वयः के भीतरही इनके मनोरमा और शेखर भी, कारकान्त, हो गये। इसके बाद पातञ्जल महाभाष्य, वैयाकरणभूषण, मञ्जूषा, शक्तिवाद, आदि सभी व्याकरणग्रन्थ और पुराण, साहित्य आदि भी, तेरहवें वर्ष से सोलहवें वर्ष तक हो गये। सोलहवें से बीसवें वर्ष तक छः आस्तिकदर्शन, छः नास्तिकदर्शन और चार नवीनदर्शन इन्होंने पढ़े। इन ग्रन्थों के साथ साथ वेद और तत्सम्बन्धी अन्यान्य ग्रन्थ भी ये पढ़ते थे। बीसवें से तेईसवें वर्ष तक इन्होंने वेदभाष्य आदि समाप्त कर पाठशाला जाना बन्द किया।



श्रीयुक्त सत्यव्रत सामश्रमी।

पाठकों को आश्चर्य्य होगा कि इतने कम वय में इतने कठिन कठिन ग्रन्थ इन्होंने कैसे पढ़े। इसपर मेरा उत्तर यह है कि असाधारण प्रतिभा के अतिरिक्त सामश्रमीजी परिश्रम भी अलौकिक करते थे। आज, ७२ वर्ष की अवस्था होने तक, प्रतिदिन, ३ घण्टे से अधिक ये कभी नहीं सोये। इनका सब समय पढ़ने पढ़ाने की चर्चाही में बीता है। सच है, जिसे विद्यासुख मिल जाता है उसे उसके साथ ही इस मन्त्र का उपदेश भी हो जाता है कि—

"न तदस्ति न यत्राहमतदस्ति न तन्मयम्।
किमन्यदभिवाञ्छामि यन्मे नास्ति समीहितम्॥"

वेदभाष्य की समाप्ति हो जाने के बाद सामश्रमी जी देशाटन को निकले और जयपुर आदि राजस्थानों में परिभ्रमण करते हुए जहां जहां गये,

वहां वहां इन्होंने आदर पाया। जयपुर महाराज के दर्बार में जो इनका सत्कार हुआ वह वर्णनयोग्य है। और, पिशुन लोगों की चालबाज़ी का वृत्तान्त भी सुनने लायक़ है। परन्तु स्थानाभाव से मैं उसे यहां न लिखूंगा। क्योंकि ऐसी ऐसी बातें इनके शुभजीवन में इतनी हुई हैं कि संक्षेपतः भी उनका वर्णन करना मानो एक बड़ी सी पुस्तक लिखना है।

जब सामश्रमीजी २० वर्ष के थे, तब वे बूंदी-महाराज के यहां गये। बूंदी महाराज के यहां पण्डितों की एक अतीव कठिन परीक्षा होती है। इस छोटी उम्र में भी श्रीसत्यव्रत सामश्रमीजी उसमें पास हुए और उन्होंने सभीको आश्चर्य्ययुक्त कर दिया। यहीं उनको बड़े बड़े पण्डितों ने "सामश्रमी" की उपाधि दी।

इसके उपरान्त सामश्रमीजी को फिर उत्तर की तरफ़ यात्रा करने को इच्छा हुई। इस यात्रा का अभिप्राय यह था कि अन्यान्य वैदिक पण्डितों से परिचय हो; और, जो जो बातें काशी के वैदिक पण्डित न समझा सके थे, उन्हें वे समझें; और साथ ही साथ तीर्थदर्शन भी हो। अतः २४ वर्ष की अवस्था में आपने काशी से पैदल यात्रा की। यह आजकल के ऐसे पण्डित नहीं हैं जो मसनद लगाये बैठे रहते हैं। इनके मन में स्फूर्त्ति, साहस, और बल सदाही बना रहा। इसीसे इन्होंने हज़ारों कोस पैदल चलना स्वीकार किया। सच है, ऐसे ही मनुष्यों का जीवन जीवन है। इस यात्रा में जौनपुर, नैमिषारण्य, हरिद्वार, गङ्गोत्री, आदि स्थानों को देखते वे बदरिकाश्रम गये। लौटती बार चण्डी-पहाड़, रुड़की, कुरुक्षेत्र, दिल्ली, विन्ध्याचल, आत्रेयाश्रम, अनुसूयाश्रम, अमरकुण्डादि घूमते घामते वे प्रयाग लौट आये। फिर वहां से वे काशी आये। इस यात्रा में दो वर्ष लगे और कई बड़े बड़े महात्माओं से भेंट हुई। जिस समय यह हरिद्वार गये, उसी समय वहां कुम्भ का मेला था। बहुत से राजा महाराजा और पण्डित एकत्रित थे। कश्मीर के भूतपूर्व महाराजा रणवीरसिंह जी ने एक बड़ी सभा की थी। उसमें कोई ५०० प्रसिद्ध पण्डित, पश्चिमोत्तर प्रदेश और पञ्जाब के, निमन्त्रित थे। सभा का विषय यह था कि गोसाईं लोग ठीक सन्यासी हैं या नहीं। पं० सत्यव्रतजी भी बुलाये गये। इनके साथ ४ विद्यार्थी भी थे। अधिक पण्डित गोसाइयों की तरफ़ थे। परन्तु जो विचार सामश्रमीजी का था, वही सर्वमान्य ठहरा। सच है, विचार के आगे वितण्डा क्यों कर रह सकती है? यहां गोसांइयों के दुराक्रमण से सामश्रमीजी बड़ी कठिनता से बचे। किस किस अवस्था में मनुष्य अपने को किस किस प्रकार आपत्तियों से बचा सकता है, इस बात को सीखने के लिए भी सामश्रमीजी की जीवनी उपयुक्त है। मैं चाहता हूं कि उन उन बातों को भी लिखूं; पर इस छोटे से लेख में नहीं लिख सकता। कुम्भ मेला के शास्त्रार्थ के बाद महाराजा काश्मीर इन्हें बहुत प्यार करने लगे। परन्तु परोन्नति दुर्दर्शक पिशुन पण्डितों ने अपना दुराशय प्रकट किया। इससे सामश्रमी को निराश होकर वहां से चलना पड़ा।

वहां से, फिर भी, एकवार उत्तर दिशा को गमन करना इन्हें पसन्द हुआ। अतः दो विद्यार्थियों के साथ सप्तस्रोत, रम्भा-सङ्गम, वीरभद्र और कई पुण्य स्थानों को देखते भालते ये हृषीकेश पहुंचे। सामश्रमीजी कहते हैं कि उन्होंने फिर वैसा सुन्दर स्थान कहीं नहीं देखा। यहां इन्होंने एक महामहिम वृद्ध सन्यासी का पता लगाया जिनकी जाति आदि का कोई निश्चय न था। यह कौन थे, कौन जान सकता था? ये अत्यन्त छिपे हुए एक पाषाण-मन्दिर में रहते थे और केवल संस्कृत बोलते थे। इन्हीं महात्मा से सामश्रमीजी को वे सब बातें मालूम हुईं जिनकी खोज में वे निकले थे।

काशीजी लौट आने पर इन्होंने "प्रत्नकम्रनन्दिनी" (The Hindu Commentator) नामक पत्रिका निकालना प्रारम्भ किया। यह पत्रिका संस्कृत भाषा में थी। इसमें इनके रचित अनेक



माननीय गोपालकृष्ण गोखले, बी० ए०, सी० आई० ई०

उत्तमोत्तम लेख, आदि छपते थे। मैं ऊपर कह चुका हूं कि इनके पिता की इच्छा बङ्गाल में वेद की शिक्षा फैलाने की थी। अतः इन्हें ग्रैार देशाटन करने की आज्ञा न मिली; बङ्गाल ही में चला आना पड़ा। जब ये काशी में थे ग्रैार "प्रत्नकम्र-नन्दिनी" को निकालते थे, तब ये काशिराज के यहां द्वारपण्डित भी थे। काशिराज इन्हें बहुत मानते थे। जैसे जैसे इनकी विचक्षणता ग्रैार बुद्धि की चमत्कृति का यश फैला, तैसे तैसे बंगवासियों को इनकी चाह हुई। ग्रैार प्रसिद्ध विद्वान्, डाक्टर राजा राजेन्द्रलाल मित्र, एल० एल० डी०, ने जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे, ऐशियाटिक सोसायटी के लिए, सामवेदसंहिता का संस्कार कराना चाहा। यह काम सामश्रमीजी के कलकत्ते आने पर ही हो सकता था। अतः ये काशी से कलकत्ते आये।

१८६९ के नवम्बर में जब बनारस के महाराज के आज्ञानुसार आनन्दबाग़ में स्वामी दयानन्दजी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था, तब यही मध्यस्थ चुने गये थे ग्रैार काशी बुलाये गये थे।

१८६८ में इनके गुणों पर मुग्ध होकर, नवद्वीप के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित व्रजनाथ विद्यारत्न ने, जिन्हें बङ्गदेशीय ब्राह्मण गुरु मानते थे, अपने पुत्र पण्डित मथुरानाथ भट्टरत्न की कन्या का इनसे विवाह कर देना निश्चित किया ग्रैार तदनुरूप विवाह हुआ। इतने दिनों तक सामश्रमीजी ने विवाह इसलिये नहीं किया था कि ब्रह्मचर्य्य का पालन हो। आजकल ब्रह्मचर्य्य पालन न करने ही से नवयुवक प्रतिभा-शून्य होते हैं। इनकी तरह ब्रह्मचर्य्यनिष्ठ पुरुष विरलाही कोई होगा। ब्रह्मचर्य्य के गुणों में इनको पूरा विश्वास है। बालविवाह के ये पूरे विरोधी हैं।

१८७३ में, जब पण्डित सत्यव्रतजी कलकत्ते ही में थे, बहुविवाहवाद में ये विचारक बनाये गये। स्वर्गवासी पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इस पर शास्त्रार्थ कराने को पहले पहल विचार किया था। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बहुविवाह को शास्त्रविरुद्ध सिद्ध करके सरकारी क़ानून द्वारा उसे उठाने का प्रबन्ध किया था। इसमें सत्यव्रतजी का मत यह था, कि शास्त्र में बहुविवाह को ममानियत नहीं है, परन्तु बुरे समय में यह रीति चली है। ग्रैार कालक्रम से पुरानी रीतियों का ह्रास होता ही है। अतः इसमें सरकारी दस्तन्दाज़ी की आवश्यकता नहीं। अन्ततः जो सत्यव्रतजी का विचार था वही सर्वमान्य समझा गया।

इसी प्रकार महाराजा रीवां के यहां भी चक्रांकन के विचार में ये बुलाये गये ग्रैार इन्हींका विचार प्रशस्त समझा गया। इनके प्रतिद्वन्द्वी श्री रंगाचार्य्य ग्रैार श्रीहरिश्चन्द्र थे।

फिर कुछ दिन बाद एशियाटिक सोसयटी बङ्गाल के ये "असोशियट" मेम्बर मुक़र्रर किये गये। गवर्नमेन्ट ने भी वेद ग्रैार दर्शन की परीक्षा में इनको परीक्षक नियत करके इनका आदर किया। १२ वर्ष तक ये वेद ग्रैार दर्शन की उपाधि परीक्षा के परीक्षक रहे; ग्रैार अद्यावधि पञ्जाब की शास्त्रिपरीक्षा के परीक्षक हैं।

सत्यव्रत सामश्रमी जी ने कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखकर संस्कृत विद्यागार को पूरा किया है। इन्होंने निरुक्तालोचन नामक एक उत्तम ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ पर पाश्चात्य विद्वानों की जो सम्मतियां हैं, वे देखने लायक़ हैं। सं० १८८९ में सामश्रमी जी ने वैदिक पत्र "उषा" को प्रकाशित किया। यह ३ वर्ष तक निकला। यह परमोत्तम पत्र था; परन्तु, न जानें क्यों, इसका प्रकाश धीमा पड़ गया ग्रैार अन्ततः बुझ गया। मेरी प्रार्थना है कि सामश्रमीजी उस पत्र को निकालना न बन्द करें, क्योंकि उनके छोड़े हुए विषयों का फिर पूरा होना असम्भव सा है। कालक्रम आज कल ऐसा ही है। पण्डितजी का ग्रौदार्य्य भी सराहने योग्य है। किस सचाई से आपने बौद्ध धर्म-ग्रन्थ काण्डव्यूह का संस्कार

और उसका अनुवाद प्रकाशित किया है, कि वह साधारण जन का काम नहीं कहना चाहिये।

पण्डितजी के ग्रन्थों के विषय में और और विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख मैं पीछे करूंगा। यहां पर पण्डित जी के धार्म्मिक विचारों के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। जब आप १९।२० वर्ष के थे और आपकी विद्योपार्ज्जन की इच्छा अत्यन्त उच्च शिखर पर चढ़ी थी, तब आपने तन्त्र का अभ्यास किया था। आपने सुना था कि श्रीमहाकवि कालिदास ने तन्त्र के बल से ही सरस्वती देवी को प्रसन्न करके सहसा विद्या प्राप्त कर ली थी। यही इच्छा इनकी भी हुई। अतः उस समय के महातान्त्रिक पूर्णानन्दस्वामी से आपने तन्त्रविधान सीखा और तन्त्र के सब ग्रन्थ पढ़ डाले। तन्त्र में शवसाधन की क्रिया सबसे विकट है; और, कहा जाता है, कि तत्क्षण फलप्रद भी है। इससे इन्होंने गुरूपदेशानुसार तन्त्रसाधन प्रारम्भ किया। कुछ दिनों तक ये पूरे तान्त्रिक रहे। फिर इसकी असारता देख इन्होंने इसे त्याग दिया। जिन जिन क्रियाओं को इन्होंने आरम्भ किया, उन्हें बड़े मनोयोग से इन्होंने पूर्ण किया। इसके उपरांत ये वैष्णव धर्म में गये और यथायथ वैष्णव हुए। सभी तत्वों को इन्होंने जान लिया। ब्राह्मधर्म में भी इन्होंने प्रवेश किया। इसके ये उपदेष्टा रहे। इसके कई ग्रन्थ इन्होंने संस्कृत में लिखे। ब्राह्मधर्म को भी इन्होंने ख़ूब देखा। तब ये थियासफ़िस्ट (Theosophist) हुए। उसकी भी बातें इन्होंने मालूम कीं। परन्तु पाठकों को यह सन्देह न करना चाहिये कि यह धर्म बदलते रहे। इनका एक धर्म, जिसे ये वैदिक धर्म कहते हैं, सदा ही एक सा रहा है। परन्तु और धर्मों के गूढ़ तत्वों को जानने के लिए अपनी वृत्ति इन्होंने तदनुरूप की। क्योंकि यह इनका ख़याल है, कि जब तक आदमी दूसरे के साथ अपनी पूरी सहानुभूति करके उसका मन अपनी तरफ़ नहीं खींच सकता, तब तक उसकी असली बातें उसको कभी नहीं मालूम होतीं। सामश्रमीजी का ख़याल है कि संसार भर के धर्मों में यदि कोई सच्चा और निर्दोष धर्म है तो वह वैदिक धर्म है। पुराण आदि को ये कुछ गल्प, कुछ इतिहास, मानते हैं। गल्प इसलिये कि अपढ़ या अधपढ़ों की मोटी बुद्धि में धर्माङ्कुर जमाने के लिये इनकी रचना है। इसका यह निरुत्तर प्रमाण देते हैं। अस्तु, जो हो, मेरा तो जितना समय इनके साथ बीतता है, उतना परमकल्याणकारी समय मालूम होता है। इतनी विद्या-बुद्धि रहने पर भी इनको गर्व्व का लेशमात्र नहीं है। मिलनसार तो ये इतने हैं कि इनसे मिलकर जो आनन्द से भर जाता है।

विलायत के डाकृर रोस्ट (Dr. R. Rost, India Office, London,) ने सामश्रमी जी की एक संक्षिप्त जीवनी लिखी है। उसमें वे कहते हैं—

"It would have been strange, if a life of such incessant literary activity, preceded by years of such severe and almost ascetic study, had not left its mark on the Pandit's constitution. A tedious illness of three years' duration and harassing domestic difficulties, happily now passed, have somewhat crippled his naturally strong powers. But it may be hoped that he may yet long be spared both to his country and to philological science, which can ill-afford to lose men of his stamp, of whom no country possesses too many."

बार्थ (M. A. Barth) साहब ने फ़्रेञ्च भाषा के एक लेख में लिखा है—

"His (Samasramin's) training is founded, at least in the first instance, on the native tradition, and among living scholars he is certainly one of the best specimens that the native system of education has produced. But at the same time he has a very open mind, in no way inaccessible to influences from without..........

There is in him no trace of blind hostility, or of a gloomy and stern orthodoxy, even in face of those solutions which shock his most cherished convictions."

इसी प्रकार उन्होंने और भी बहुत कुछ कहा है।

आर० सी० दत्त के हिन्दू शास्त्र पर "कलकत्ता रिव्यू" में प्रकाशित हुई सामश्रामीजी के विषय में कुछ बातें सुनिये—

"The first collaborateur of Mr. R. C. Dutta to take the field is the old veteran Pandit Satyavrata Samasrami, at this moment the best Vedic scholar in India."

इसी प्रकार अध्यापक मोक्षमूलर, बङ्गाल तथा जर्मनी और फ्रांस आदि देशों के पण्डित इन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देख कर मान्य समझते हैं।

पण्डितजी आजकल भी एशियाटिक सोसायटी के सभासद हैं और कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिख रहे हैं। आपके तीन लड़के हैं। वे सब वेद के पण्डित हैं और अंग्रेज़ी भी पढ़े हैं।

मेरी भी डाक्टर रोस्ट के इच्छानुरूप इच्छा है कि ईश्वर पण्डितजी को दीर्घजीवी बनावे जिसमें संस्कृत विद्या की उन्नति होती रहे। पण्डितजी ने आज तक कोई ८० ग्रन्थ लिखे हैं, जिन्हें देखते ही बन पड़ता है। जिन्हें उनको देखना हो वे हितव्रत शर्म्मा, १६।१ घोष की गली, मानिकतल्ला, कलकत्ता, के पते से पत्रव्यवहार करें।

जगन्नाथप्रसाद वर्म्मा।

लार्ड अलिन्-कुमारी।

[अंग्रेज़ी कवि केम्बल (Campbell) कृत "लौर्ड अलिन्स डौटर" (Lord Ullin's Daughter) नामक कविता का भावार्थ।]

[१]

हाइलैंड्-गामी नृपति एक यों
बोला "नाविक, लगा न बार,
झील-पार मुझको उतार दे,
दूँगा तुझको धनोपहार।"

[२]

"आप कौन लौगाइल्-तरणार्थी,
आँधी, तम जब भारी है?"
"अल्वा टापू का मैं नृप हूँ,
यह लार्ड् अलिन्-कुमारी है।

[३]

"उसके भृत्यों के सम्मुख से
भगता आता हूँ दिन रात;
यदि वे मुझे पकड़ पाते तो
होता मेरा रक्त-निपात।

[४]

"यदि मेरे पद-चिन्ह देख लें
उसके अश्वारोही वीर—
हा! प्यारी किस तरह रहैगी,
हूँगा जब मैं छिन्न-शरीर!"

[५]

बोला हाइलैंड का नाविक
"नृप, मैं लिये चलूँ हूँ पार;
तेरी प्यारी ही कारन है,
न कि तेरा बहु धनोपहार।

[६]

"वचन-शपथ तेरी प्यारी का,
मैं भय तुरत निवारूँगा;
यदपि श्वेत लहरें लहरावैं
तौभी पार उतारूँगा।"

[७]

इतने में अति ज़ोर शोर से
आँधी घोर उमड़ आई;
घोर घटा में उनके चेहरों
पर भी अँधियारी छाई।

[८]

ज्यों ज्यों आँधी हुई प्रबलतर
और निशा का हुआ प्रसार,
दिया सुनाई शस्त्रधरों का
पास वहीं पर पद-प्रहार।

[९]

"कर न देर अब," बाला बोली,
"आँधी, तम का कर न विचार;
क्रुद्ध पिता मिलने से अच्छा
है निमग्न होना सौ बार।"

[१०]

तजा भयङ्कर तट, पर सम्मुख
है दुस्तर जलराशि अशान्त;
हा! अनर्थ!! असहाय अकेली
नाव हो गई झंझाऽक्रान्त!!!

[११]

तदपि गरजती, ऊँची लहरैं
उसे ज़रा भी सकीं न रोक;
पहुँचा लार्ड अलिन जब तट पर,
कोप-हीन हो हुआ सशोक।

[१२]

क्योंकि आत्मजा देखी उसने,
डरती आँधी से मन में,
एक हाथ रक्षार्थ पसारे,
एक प्रियतमालिङ्गन में।

[१३]

"लौट, लौट," बोला वह दुख में,
"आँधी तम है भयकारी;
क्षमा मिलैगी तेरे प्रिय को,
बेटी, हे बेटी, प्यारी!"

[१४]

व्यर्थवाद; उत्तुङ्ग तरङ्गें
बाधा बनीं बीच में आय;
दुहिता उसकी डूबी जल में,
रहा बिलपता वह दुख पाय!

सनातन शर्म्मा सकलानी।

कलङ्की* को ऐड्रेस।

[१]

रे दोषाकर†! पश्चिमबुद्धि!
कैसे होगी तेरी शुद्धि?
द्विजगण‡ को कोने बैठाया;
जड़ दिवान्ध§ को पास बुलाया।

[२]

रवि ने तुझको दिया उजास,
करने को प्रिय-सुमन-विकास।
खिलते हुए सुमन के गुच्छ;
तेरी आँखों खटके तुच्छ!

[३]

तव उजास में जो सो जाय,
बहुधा उसे रोग हो जाय।
अथवा पकड़ हाथ से मस्तक;
रोवै वह दो चार रोज़ तक॥

[४]

अब तक हुए नहीं दो चार—
बेहद तेरे अत्याचार।
अङ्ग भङ्ग तक तू करता है;
पातक से न ज़रा डरता है॥

[५]

झूठे हैं सब अच्छा बोला;
सब जग को अपना सा तोला।
तारा की तू कर ले याद
करता है क्यों वृथा विवाद?

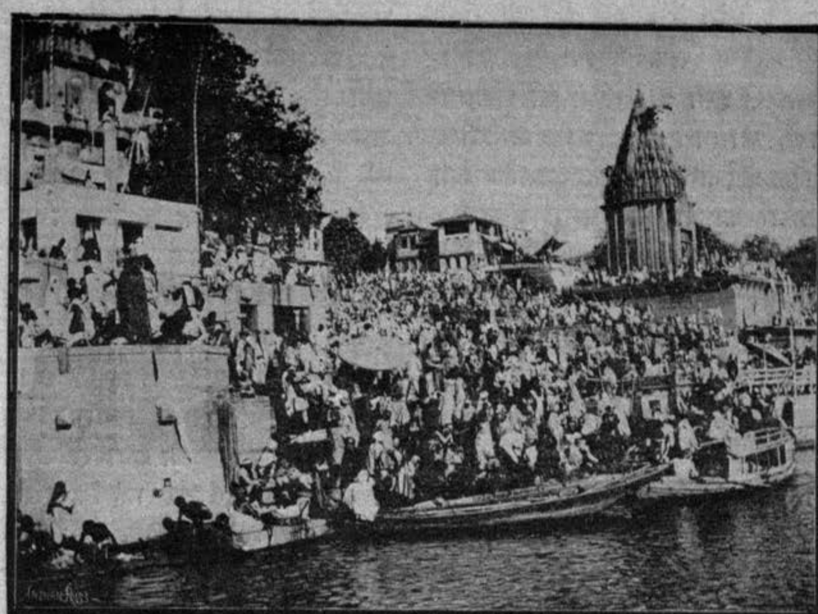
[६]

सँभल ज़रा, यह है अब आया
कृष्णपक्ष मेरा मनभाया।
अब तू दिन दिन होकर क्षीण
तम में हो जावैगा लीन॥

गिरिधर शर्म्मा।

* चंद्रमा = शशलाञ्छन।
† दोषा (रात) का करनेवाला और दोषों का आकर (खानि)।
‡ द्विजगण = द्विजाति और पक्षिसमूह।
§ दिवान्ध = उल्लू।

बनारस ।



इस महीने के अख़ीर में "इंडियन नेशनल कांग्रेस" का जलसा बनारस में होगा। सामाजिक परिषद् ग्रैार प्रदर्शनी भी होंगी। दूर दूर से लोग वहां जायँगे। इसलिए बनारस का संक्षिप्त वर्णन हम यहां पर देते हैं।

इस विषय की पुस्तकें ।

बनारस पर अँगरेज़ी में अनेक पुस्तकें हैं। शेरिंग् साहब ने "हिन्दुओं का पवित्र नगर" (Sacred city of the Hindus) नाम की एक बड़ी पुस्तक लिखी है। जो लोग बनारस जाते हैं उनके लिए उन्होंने एक ग्रैार छोटी सी किताब भी लिखी है। उसका नाम है "Hand-book for visitors to Benares"। डाकृर लाज़रस ने रेवरंड पार्कर-कृत बनारस का एक गाइड भी प्रकाशित किया है। केन साहब की "पिक्चरस्क इंडिया" ग्रैार पादरी केनडी की "बनारस ग्रैार कमाऊं" नाम की पुस्तकों में भी बनारस का वर्णन है। क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी ने भी एक छोटी सी किताब बनारस पर प्रकाशित की है। इनके सिवा बनारस के गज़ेटियर, हंटर के इम्पीरिएल गज़ेटियर, कनिंगहम के आरकियालाजिकल सर्वे की रिपोर्टें, ग्रैार संयुक्तप्रान्तसम्बन्धी पुरानी इमारतों ग्रैार पुराने शिलालेखों के विषय में फ़ूरर साहब की पुस्तक, में भी बनारस का हाल है। एक महाराष्ट्र महाशय ने मराठी में एक किताब लिखी है। उसमें भी बनारस का अच्छा वर्णन है। पर हिन्दी में बनारस-वर्णन पर एक भी पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। पुराणों में भी, कहीं कहीं बनारस का हाल है।

प्राचीन बनारस ।

बनारस बहुत पुराना शहर है। इसका संस्कृत नाम काशी या वाराणसी है। पुराने ज़माने में

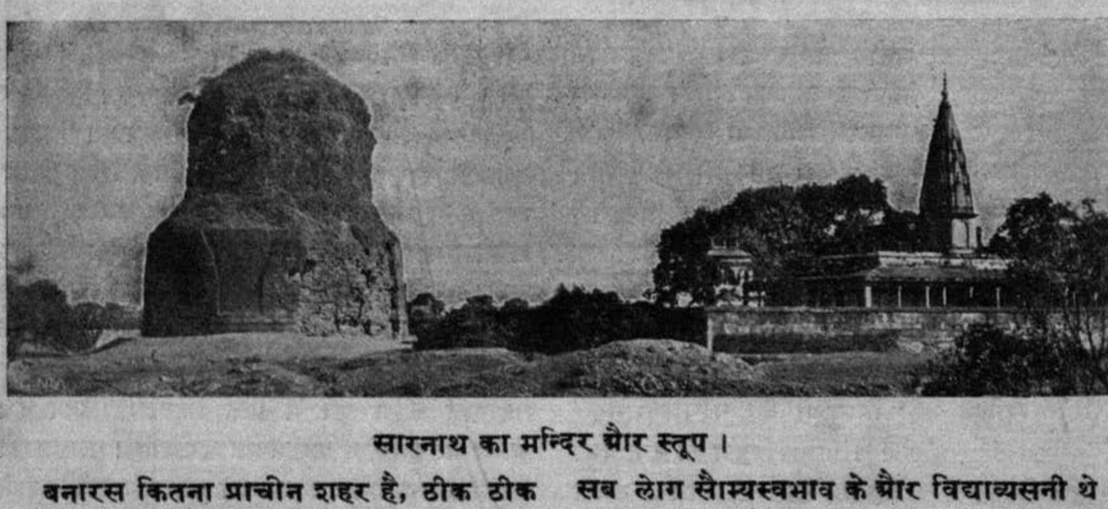
यहां काश नाम का एक राजा हो गया है। उसीके नामानुसार शायद काशी नाम पड़ा है। वरुणा और असी नामक नदियों के सङ्गम पर, या उनके बीच में, होने के कारण इसका दूसरा नाम वाराणसी हुआ। बनारस इसी वाराणसी का अपभ्रंश है। विष्णुपुराण, भागवत और हरिवंश आदि पुराणों में काशी का कई जगह वर्णन है। उनमें काशी के पुराने राजाओं का भी थोड़ा बहुत हाल है। काश, दिवोदास और अजातशत्रु आदि काशी के मशहूर राजाओं में से थे। किसी समय काशी के आस पास का देश पुण्ड्र या पुण्ड्रक कहलाता था और उसके राजा पौण्ड्रक। पुण्ड्र गन्ने को कहते हैं। पौंडा पुण्ड्रही का अपभ्रंश है। पुराने ज़माने में "पुण्ड्रक-शर्करा" बहुत प्रसिद्ध थी। अब भी बनारस की चीनी मशहूर है।

विष्णुपुराण में लिखा है कि काशी को एक दफ़ा विष्णु के सुदर्शनचक्र ने जलाकर ख़ाक कर दिया था।

बनारस कितना प्राचीन शहर है, ठीक ठीक नहीं मालूम। ईसा के १२०० वर्ष पहले तक उसके अस्तित्व का पता चलता है। शाक्यमुनि ने, ईसा के ६०० वर्ष पहले, जिस समय पहले पहल, अपने चेलों को बौद्धधर्म्म का उपदेश दिया, उस समय बनारस एक विशाल नगर था। बनारस से तीन मील उत्तर एक जगह सारनाथ है। उसे लोग धमेख कहते हैं। वहीं बुध ने पहले पहल धर्म्मोपदेश किया था। किसी किसी का मत है कि बनारस पहले वहीं बसा हुआ था। बनारस के आस पास की ज़मीन को देखने से जान पड़ता है कि उसने कई दफ़ा अपना स्थान परिवर्तन किया है। जिस जगह को लोग आजकल सारनाथ कहते हैं, उसका नाम बौद्धों की पुस्तकों में "मृगदाव" है। सम्भव है, किसी समय यहां जङ्गल रहा हो और उसमें हिरन रहते रहे हों।

होएनसङ्ग के समय में बनारस।

सातवें शतक में चीन का प्रसिद्ध बौद्ध सन्यासी होएनसङ्ग हिन्दुस्तान में आया। वह पञ्जाब की तरफ़ से घूमता हुआ बनारस पहुँचा। वह अपने प्रवास-वर्णन में लिखता है कि उस समय बनारस-राज्य का घेरा ८०० मील था। ख़ास शहर चार मील लम्बा और एक मील चौड़ा था। सब लोग ख़ुश थे। अमीरों के यहां अनन्त धन-दौलत थी। सब लोग सौम्यस्वभाव के और विद्याव्यसनी थे। हिन्दू बहुत थे, बौद्ध कम। प्रान्त भर में ३० संघाराम थे; उनमें कोई ३००० के क़रीब बौद्ध पुजारी थे। हिन्दुओं के मन्दिरों की संख्या एक सौ थी। उनमें, सब मिलाकर, १०,००० पुजारी थे। लोग प्रायः महादेव के उपासक थे। ख़ास बनारस में



सारनाथ का मन्दिर और स्तूप।

२० देव-मन्दिर थे। महेश्वर की एक प्रतिमा १०० फ़ुट ऊंची थी। वह ताँबे की थी। वह ऐसी अच्छी बनी थी कि जान पड़ता था कि वह सजीव है।

शहर के उत्तर-पूर्व दिशा में एक स्तूप था। उसके सामने पत्थर का एक स्तम्भ था। वह स्फटिक के समान चमकता था। वरुणा नदी से दो मील के फ़ासले पर "मृगदाव" का प्रसिद्ध संघाराम था। उसके ८ भाग थे। वह कई-मंज़िला था। उसके हाते में २०० फ़ुट ऊंचा एक विहार था। उसकी छत के ऊपर एक आम (फल) सोने का बना हुआ था। विहार में पूरे क़द की एक बुध की मूर्ति थी। उसी जगह शाक्यमुनि ने अपने धर्म्मोपदेशरूपी चक्र को सबसे पहले गति दी थी।

मध्यकालीन बनारस।

अनेक कारणों से बौद्धमत का धीरे धीरे ह्रास होता गया। बौद्धों में तांत्रिक सम्प्रदाय की शक्ति जैसे जैसे बढ़ती गई, तैसेही तैसे उनकी नैतिक-शक्ति क्षीण होती गई। इस अवस्था में कुमारिल स्वामी और शङ्कराचार्य आदि हिन्दू आचार्य्यों के आक्रमण से बौद्ध-धर्म्म के पैर इस देश से उखड़ गये। उनके "विहार" बन्द हो गये; उनके "संघाराम" उजड़ गये; उनके अनुयायी यहां से भग खड़े हुए। दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में शायद एक भी बौद्ध बनारस में न रह गया। सारनाथ के आस पास की बौद्ध बस्ती जला दी गई। बौद्धों के पूजा-स्थान, उनकी मूर्तियां और उनके पुजारी तक जला दिये गये। अब तक सारनाथ में हड्डियां, लोहा, लकड़ी, राख, पत्थर ज़मीन में गड़े हुए मिलते हैं।

बनारस में दो पुराने ताम्रपत्र मिले हैं। वे सम्वत् ११८१ और ११८५ के हैं। राजा गोविन्द-चन्द्रदेव के वे दान-पत्र हैं। उनसे मालूम होता है कि कान्यकुब्ज के राजाओं का राज्य बनारस तक था। वे वाराणसी के भी राजा कहलाते थे। परन्तु बनारस का इस समय का इतिहास बहुत ही कम ज्ञात है। ११९३ ईसवी में मुहम्मद ग़ोरी ने जब से जयचन्द्र को परास्त किया, तब से बनारस पर मुसल्मानों का अधिकार हुआ और ६०० वर्ष तक बराबर बना रहा। उन्होंने बनारस के बड़े बड़े मन्दिरों को मसजिदों और मक़बरों में परिवर्तित कर दिया और छोटों को गिराकर उनके ईंट पत्थर से अपने मकान और मसजिदें वग़ैरह बनवाईं। अलाउद्दीन इस बात को बड़े घमण्ड से कहता था कि सिर्फ़ बनारस में उसने १००० मन्दिर गिराकर उन्हें उसने ज़मीन के बराबर कर दिया। औरङ्ग-ज़ेब ने उसका नाम मुहम्मदाबाद रक्खा और उसके नये पुराने मन्दिरों को खोदकर ख़ुदा के सबसे बड़े बन्दों की फ़ेहरिस्त में अपना नाम दर्ज कराया। यही कारण है जो दो तीन सौ वर्ष से अधिक पुरानी एक भी पूरी इमारत बनारस में विद्यमान नहीं।

आधुनिक बनारस।

अठारहवें शतक में बनारस-नगर अवध के नवाब सफ़दरजङ्ग के कब्ज़े में आया। १७३८ ईसवी में मनसाराम नामक एक पुरुष ने अपने बेटे बलवन्तसिंह के लिए नवाब से राजा का ख़िताब और बनारस का इलाक़ा प्राप्त किया। १७६३ में बलवन्तसिंह ने शाह आलम और शुजाउद्दौला के साथ बङ्गाले पर चढ़ाई की। परन्तु बक्सर की लड़ाई में अँगरेज़ों की जीत होने पर बलवन्तसिंह ने उनसे मेल कर लिया। अँगरेज़ों ने बनारस की ज़मींदारी पर कर, अर्थात् मालगुज़ारी, देने के वादे पर, बलवन्तसिंह का क़ब्ज़ा बना रहने दिया। बलवन्तसिंह के बेटे चेतसिंह ने वारन हेस्टिंगज़ की मरज़ी के मुआफ़िक़ काम नहीं किया; उसकी अनुचित आज्ञा को नहीं माना। इससे हेस्टिंगज़ ने चेतसिंह को क़ैद कर लिया। क़ैद से निकल कर चेतसिंह ने अँगरेज़ों पर हमला किया; पर कामयाबी नहीं हुई। चेतसिंह की ज़मींदारी छिन गई। उसका कुछ हिस्सा बलवन्तसिंह के पौत्र महीप-नारायणसिंह को मिला। वर्तमान काशीनरेश,

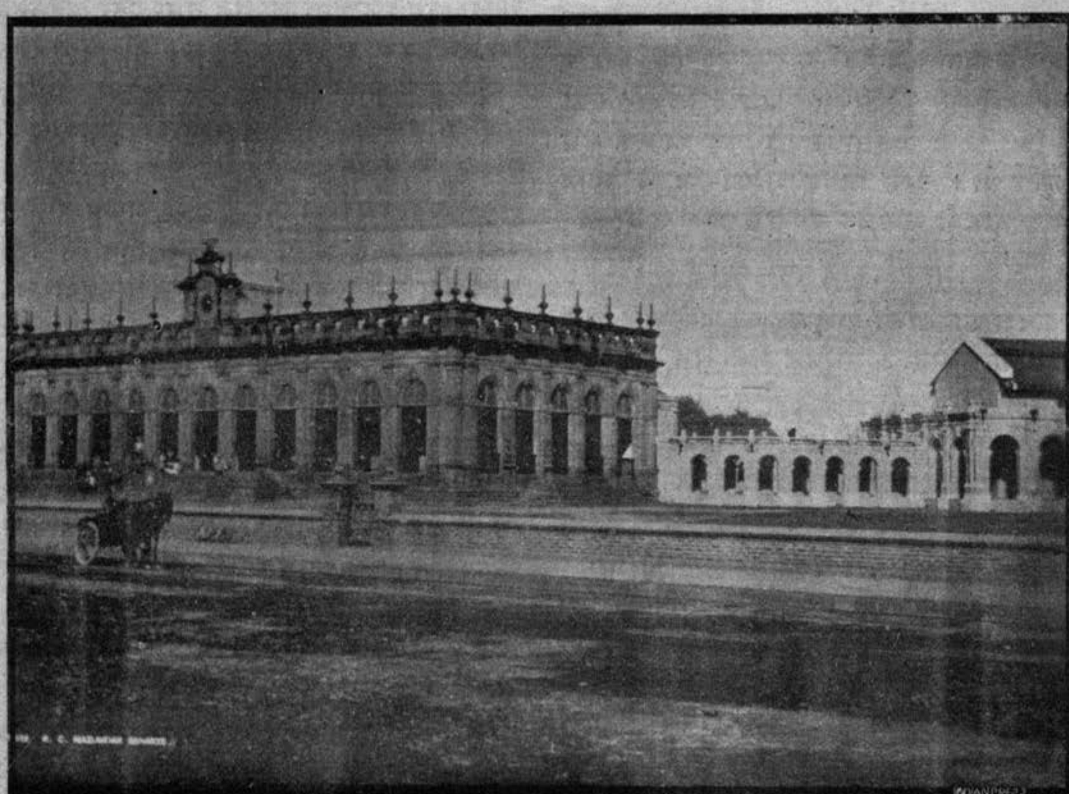
महाराज सर प्रभुनारायणसिंह, महीपनारायणसिंह के बाद तीसरे महीप हैं।

जब चेतसिंह की ज़मींदारी छिन गई, तब उसके प्रबन्ध के लिए बनारस में च्यरी साहब रेज़िडंट नियत किये गये। उस समय लखनऊ का नवाब वज़ीरअली बनारस में था। वह गद्दी से उतार कर बनारस में रक्खा गया था। १७९९ ईसवी में वह बिगड़ खड़ा हुआ और च्यरी साहब को उसने मार डाला। च्यरी साहब के साथ दो अँगरेज़ और मारे गये। पीछे से वज़ीरअली पकड़ा गया और आमरण कलकत्ते में क़ैद रहा।

शकल-सूरत आदि।

अनुमान किया जाता है कि सबसे पुराना नगर सारनाथ के पास था। पीछे से नगर का मध्यभाग वरुणा नदी के उत्तर, कहीं पर, रहा। वर्तमान नगर के उत्तर की ओर जो जगह ख़ाली पड़ी है, उसमें मन्दिरों और मसजिदों आदि के भग्नावशेष अभी तक हैं। इससे मालूम होता है कि मुसल्मानों के समय तक बनारस वरुणा के दक्षिणी किनारे पर था। इस समय बनारस ठीक गङ्गा के तट पर है। उसकी शकल अर्द्धचन्द्राकार अथवा धन्वाकार है। दशाश्वमेध घाट से नाव पर सवार होकर राजघाट के पुल की तरफ़ जाने में, विशेष करके सुबह, शहर का दृश्य अच्छी तरह देख पड़ता है। गङ्गातट पर नगर की धन्वाकार बस्ती उस समय अच्छी तरह आँखों के सामने आजाती है।

बनारस में मकान सब पत्थर के हैं। कोई कोई मकान पाँच पाँच छ छ खण्ड के हैं। गलियां बहुत



प्रिंस आफ़ वेल्स अस्पताल।

तङ्ग हैं। बस्ती बेहद घनी है। यात्रियों की हमेशा आमद रफ़ रहती है। ग्रहण, मेले ठेले, उत्सव और पर्व आदि में बाहर से आनेवाले आदमियों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। बस्ती घनी और गन्दी होने और काशीवास करने के इरादे से अनेक लूले, लँगड़े, अन्धे और बीमार आदमियों से भर जाने के कारण, बनारस की आब हवा बिगड़ी रहती है। मन्दिर, गली गली में हैं। बङ्गाली, नैपाली, महाराष्ट्र आदि हिन्दुस्तान के प्रायः सब प्रान्तों के लोग यहां रहते हैं। उनके महल्ले अक्सर अलग अलग हैं। शहर से पश्चिम और गङ्गा से कोई तीन मील की दूरी पर एक जगह का नाम सिकरौल है। वहीं बनारस की छावनी और सिविल लाइन्स वग़ैरह हैं।

बनारस में कमिश्नर और ज़िले के मामूली हाकिम रहते हैं। अवध-रुहेलखण्ड और बङ्गाल-नार्थ वेस्टर्न रेलवे के कई स्टेशन हैं। पिछली रेलवे ने सारनाथ के पास भी एक स्टेशन बनाया है। अवध-रुहेलखण्ड रेलवे का राजघाट में, गङ्गा पर, पुल है। इस रेलवे की गाड़ियां मुग़लसराय से, बनारस और लखनऊ होकर, बराबर सहारनपुर तक चली जाती हैं।

बनारस में नल है। पानी गङ्गा से आता है। गन्दगी निकालने के लिए मोरियां भी हैं।

व्यापार।

किसी ज़माने में बनारस रेशमी और ज़री के कपड़े के काम में अपना सानी नहीं रखता था। पर विलायती व्यवसायियों ने इस रोज़गार को बरबाद कर दिया। अब भी बनारस में इसका व्यवसाय होता है। कुछ दिन से "काशी सिल्क" नामक रेशमी कपड़े का प्रचार हुआ है। उस पर लोगों की प्रीति होने लगी है। देहली दरबार के समय जो प्रदर्शनी हुई थी, उसमें बनारस के बहु-मूल्य वस्त्रों की बड़ी तारीफ़ हुई थी। तिलकोत्सव के समय महारानी अलेग्ज़ण्डरा के पहनने के लिए जो पोशाक बनी थी, वह बनारसही के कपड़े की थी।

बनारस में शकर का रोज़गार पहले बहुत होता था। अब भी कुछ कुछ है।

पीतल और जर्मन सिल्वर के नक़ाशीदार और सादे बर्तन, सोने चाँदी के ज़ेवर, देवताओं की मूर्तियां, लकड़ी के खिलौने और तम्बाकू के लिए भी बनारस मशहूर है।

घाट।

बनारस में सब मिलाकर कोई ५० घाट हैं। उनमें से कुछ के नाम ये हैं—असीघाट, शिवालयघाट, केदारघाट, मुंशीघाट, दशाश्वमेधघाट, मानमन्दिर घाट, मणिकर्णिका घाट, सेंधिया-घाट, पञ्चगङ्गाघाट, त्रिलोचनघाट, हनुमानघाट, राजघाट, और बरुणासङ्गम घाट।

असीघाट सबसे दक्षिण है। यहां से रामनगर घाट, क़रीब १ मील दक्षिण है। वहीं से रामनगर जाने वाले गङ्गा पार करते हैं। रामनगर महाराजा बनारस की राजधानी है। यह घाट यद्यपि बहुत प्रसिद्ध है और काशी के पाँच प्रसिद्ध घाटों में से है तथापि दशा इसकी अच्छी नहीं। यहीं पर असी नाम का नाला गङ्गा में गिरता है। बरसात को छोड़ कर और मौसमों में वह सूखा पड़ा रहता है।

शिवालयघाट बहुत सुन्दर घाट है। उसीके ऊपर चेतसिंह का महल है। महल अभी तक अच्छी हालत में है। वह गवर्नमेंट के कब्ज़े में है। उसकी उत्तर तरफ़ की दीवार में पाँच खिड़कियां हैं। उन्हींमें से एक से होकर चेतसिंह, हेसटिंग्ज़ के डर से, १७८१ ईसवी में, भगे थे। अब लोग इस मकान को "ख़ाली-महल" कहते हैं।

केदारघाट बनारस के मशहूर घाटों में से है। यहां बङ्गाली और तैलंगी लोगों की अधिक भीड़ रहती है। इसीके ऊपर केदारनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर बड़ा है। घाट के नीचे "गौरीकुण्ड" नाम का एक जलाशय है। उसके जल की बड़ी महिमा है।

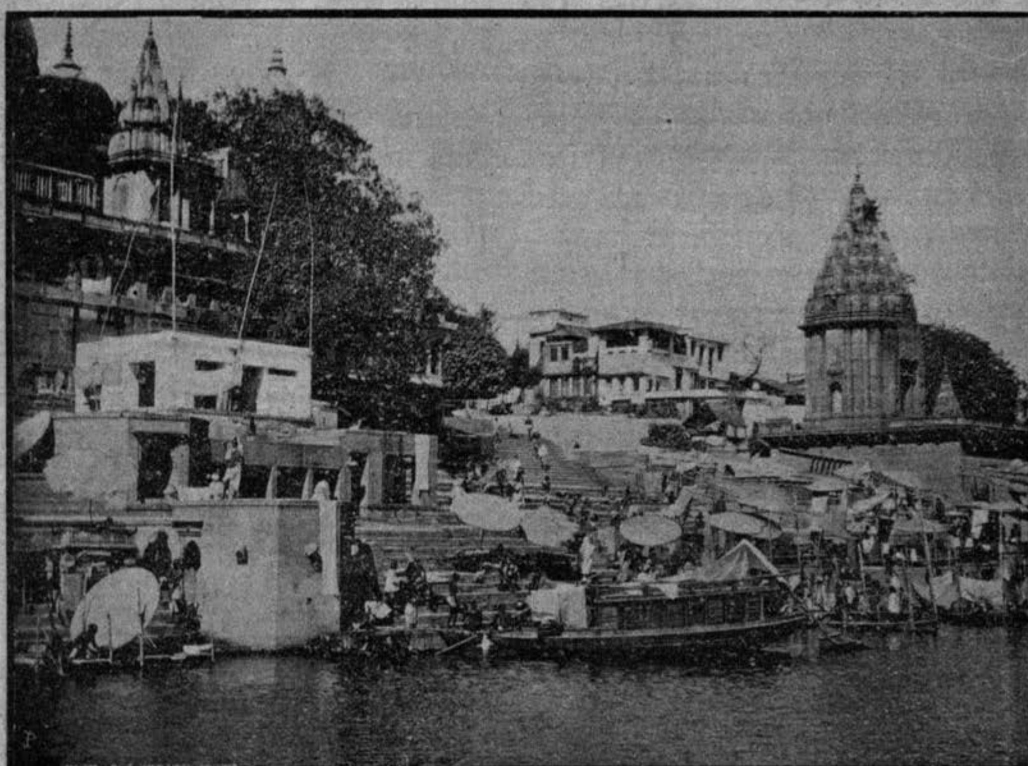
मुंशीघाट बनारस के प्रायः सब घाटों से अधिक अच्छा है। वह नागपुर के राजा के दीवान

मुंशी श्रीधर का बनवाया हुआ है। इस घाट के ऊपर की इमारत देखने लायक़ है।

दशाश्वमेधघाट बनारस के पाँच पवित्र घाटों में से है। ग्रहण के समय यहां पर बड़ी भीड़ होती है। कहते हैं, यहां ब्रह्मा ने दस दफ़ा अश्वमेध यज्ञ किया था। इसीलिए इसका नाम दशाश्वमेध हुआ। इसकी महिमा प्रयाग के बराबर समझी जाती है।

मानमन्दिरघाट। यह घाट महाराजा मानसिंह के मानमन्दिर के नीचे ही है।

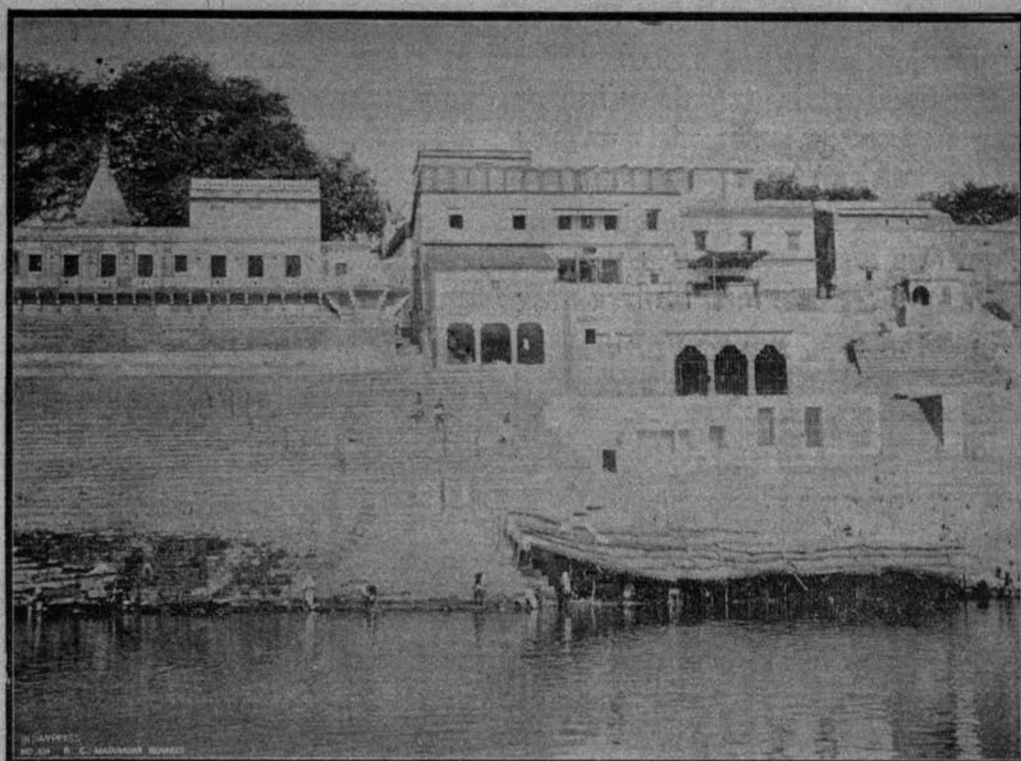
मणिकर्णिकाघाट काशी के सब घाटों से अधिक प्रसिद्ध और पवित्र माना जाता है। यह घाट सब घाटों के बीच में है। यहीं पर तारकेश्वर और सिद्ध-विनायक के मन्दिर हैं। यहां पर जो कुण्ड है उसमें शङ्कर के कान की मणि गिर पड़ी थी। इसीसे इसका नाम मणिकर्णिका हुआ। कहते हैं, विष्णु ने इसे अपने चक्र से खोदा था और अपने पसीने से भरा था। इसीके पास वह जगह है जहां मुर्दे जलाये जाते हैं।



दशाश्वमेधघाट।

सेंधियाघाट बायजा बाई सेंधिया का बनवाया हुआ है। बायजा बाई दौलतराव सेंधिया की रानी थी। बन चुकने के पहले ही यह घाट ज़मीन में धँस गया। इसके दक्षिण जो मन्दिर है उसमें ऊपर से नीचे तक एक दरार हो गई है।

पञ्चगङ्गाघाट में पाँच नदियां मिलती हैं। गङ्गा देख पड़ती हैं; बाकी, धूतपापा इत्यादि चार, सुनते हैं, पृथ्वी के नीचे हैं। इससे वे देख नहीं पड़तीं।



हनुमानघाट।

हनुमानघाट भी काशी का एक प्रसिद्ध घाट है। त्रिलोचनघाट भी पाँच प्रसिद्ध घाटों में से है। इसके आगे राजघाट है और राजघाट के आगे वरुणासङ्गम। वरुणासङ्गम में वरुणा नदी गङ्गा में गिरती है।

मन्दिर।

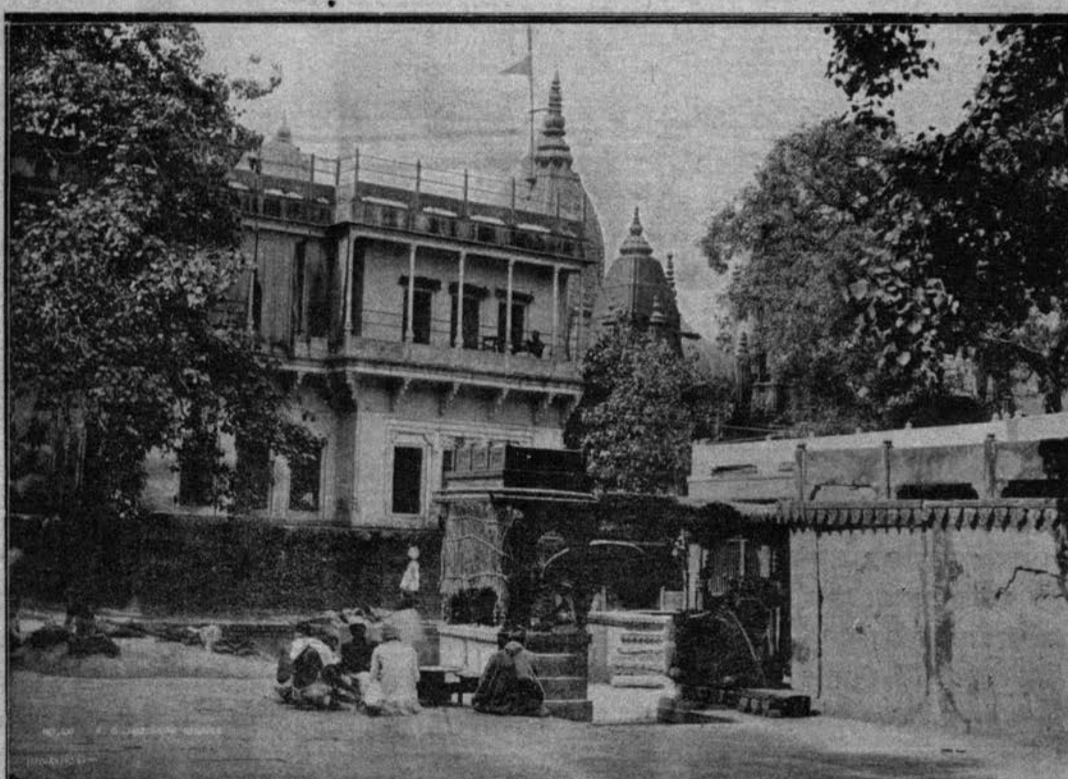
बनारस में सैकड़ों मन्दिर हैं। उनमें से दो चार प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिरों का ज़िकर, बहुत थोड़े में, हम नीचे करते हैं।

विश्वनाथ या विश्वेश्वर। यह बनारस का सब से प्रसिद्ध मन्दिर है। पुराना मन्दिर औरङ्गजेब ने तोड़ कर बरबाद कर दिया था। यह नया मन्दिर अहल्याबाई का बनवाया हुआ है। इसकी उँचाई ५१ फुट है। इसके ऊपरी हिस्से में ताम्र-पत्र पिटा हुआ है। उस पर सोने का मुलम्मा या पत्र है। सुवर्णखचित करने का काम महाराजा रणजीतसिंह के प्रबन्ध से हुआ था। इसीके पास एक और मन्दिर महादेव का है। यहीं पर अन्नपूर्णा का भी मन्दिर है। यह बाजीराव पेशवा का बनवाया हुआ है। यह, पिछला मन्दिर, भी बहुत सुन्दर है। विश्वनाथ के मन्दिर के हाते में नन्देश्वर की एक विशाल मूर्ति है। यहीं, कुछ दूर पर, ज्ञानवापी नाम का प्रसिद्ध कुँवा है। सूर्य, दुंढिराज, गणेश, गौरीशङ्कर और हनुमान् के भी मन्दिर यहीं पर हैं। कुछ दूर पर साक्षी-विनायक नामक गणेश की मूर्ति है। आप काशी के यात्रियों के यात्रा के पूरे होने की गवाही या सरटीफ़िकेट देते हैं।

आदिविश्वेश्वर का मन्दिर औरङ्गज़ेब की मसजिद के पास है। लोगों का कथन है कि यह

मन्दिर सब से अधिक पुराना है और विश्वेश्वर का आदि मन्दिर यही है। पर फ़ूरर साहब कहते हैं कि शकल सूरत से यह पुराना नहीं मालूम होता। विश्वेश्वर का पहला मन्दिर यहीं रहा होगा और मुसलमानों के द्वारा उसके तोड़े जाने पर हिन्दुओं ने वर्तमान मन्दिर बनाया होगा।

दुर्गा। यह मन्दिर असी-सङ्गम के पास है। इसे रानी भवानी ने बनवाया था। मन्दिर पत्थर का है; बड़ा है और उसमें अच्छा काम किया



विश्वेश्वरजी का सुनहरा मन्दिर।

हुआ है। इसका मध्यभाग बारह खम्भों के आधार पर स्थित है। यहां बन्दर बहुत रहते हैं। हर मङ्गलवार को यहां दर्शकों की भीड़ होती है।

भैरवनाथ टाउनहाल के पास हैं। इनके हाथ में दो ढाई हाथ का एक डण्डा है। इसलिए ये दण्डपाणि कहलाते हैं। रविवार और मङ्गल को यहां अधिक भीड़ रहती है। यही शहर के देवी-देवताओं और मनुष्यों के कोतवाल या मैजिस्ट्रेट हैं। इस मन्दिर को पूना के पेशवा बाजीराव, ने १८२५ ई० में, बनवाया था।

अमेठी का मन्दिर। यह मन्दिर मणिकर्णिका पर है। यह लाल पत्थर का है और बहुत अच्छा बना हुआ है। यह अमेठी के राजा का बनवाया हुआ है।

इनके सिवा गोपाल-मन्दिर, वृद्धकाल, केदारनाथ, कामेश्वर, सोमेश्वर, शुक्रेश्वर, तारकेश्वर, शीतला, संकटा, नवग्रह और शनैश्चर आदि के अनेक मन्दिर हैं। यहां नैपालियों का भी एक प्रसिद्ध मन्दिर है। इसकी बनावट कुछ कुछ चीन के मन्दिरों की सी है।



विश्वेश्वर के पुराने मन्दिर का भग्नावशेष।

मसजिदें।

बनारस में जैसे मन्दिरों की अधिकता है, वैसे ही मसजिदों की भी। वहां के निवासियों में कोई एक चौथाई मुसल्मान हैं।

ग्रौरङ्गज़ेब की मसजिद गंगा के किनारे है। सुनते हैं, विश्वेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर पहले यहीं पर था। उसीको तोड़ कर उसके ग्रौर दूसरे मन्दिरों के माल मसाले से यह मजजिद तैयार की गई है। मसजिद की बनावट सादी है। इसके दो मीनार १४७ फुट ऊंचे हैं। इसको लोग माधवराव का धवरहरा भी कहते हैं। मीनारों के ऊपर से सारा शहर ही का नहीं, किन्तु ग्रौर भी दूर दूर तक का, दृश्य देख पड़ता है। यहां पर पहले बौद्ध लोगों का एक चैत्य था। जब वह हिन्दुग्रों के कब्ज़े में ग्राया, तब उन्होंने उसे ग्रपने ढंग का बना लिया। मुसल्मानों ने उसे तोड़ कर इस मसजिद में लगा दिया। इसकी इमारत में बौद्ध, हिन्दू ग्रौर मुसल्मान तीनों का तर्ज़ देख पड़ता है।

विश्वनाथ के पास की मसजिद भी ग्रौरङ्गज़ेब की ख़ुदापरस्ती का चिन्ह है। ग्रनेक मन्दिरों को तोड़ कर यह बनी है। इसके सामने बौद्ध या हिन्दुग्रों के मन्दिरों के खम्भों की एक क़तार है। मसजिद की पश्चिमी दीवार में लगे हुए मन्दिरों के भग्न भाग ग्रच्छी तरह पहचाने जा सकते हैं।

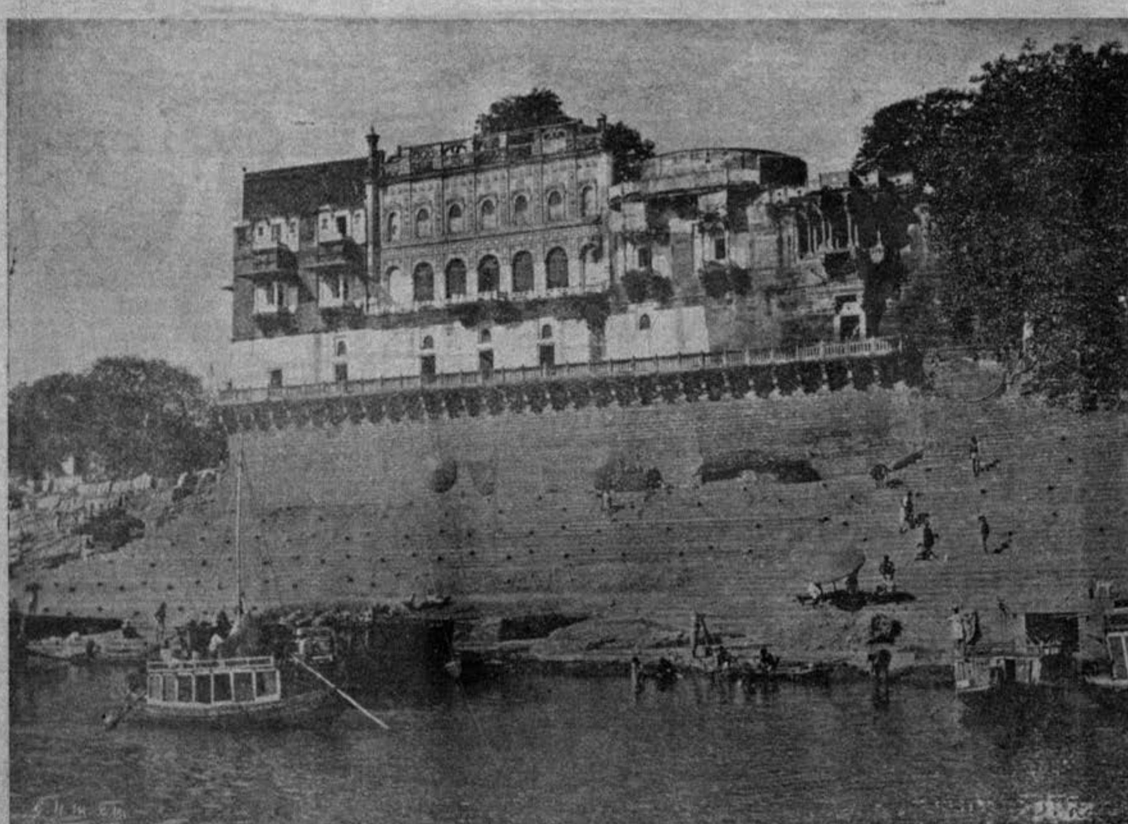
ग्रढ़ाई कँगूरे की मसजिद इसी नाम के महल्ले में है। यह बड़ी ख़ूबसूरत मसजिद है। इसमें लगे हुए चौकोन खंभे, ग्रौर कहीं कहीं को जाली, बौद्ध लोगों के समय की है। जान पड़ता

है, जहां से यह सामग्री लाई गई थी, वहां पहले बौद्धों का विहार था। बौद्धों के बाद हिन्दुओं ने उसे अपना मठ बनाया था। जब मुसल्मानों का प्रभुत्व हुआ, तब उन्होंने उसे तोड़ ताड़ कर यह मसजिद तैयार की। इस मसजिद के दूसरे खण्ड में एक पत्थर के ऊपर खुदा हुआ ११९० ईस्वी का एक लेख मिला है। उसमें बनारस और उसके आस पास के कई एक तालाब, मन्दिर और मठों के बनवाये जाने का ज़िकर है।

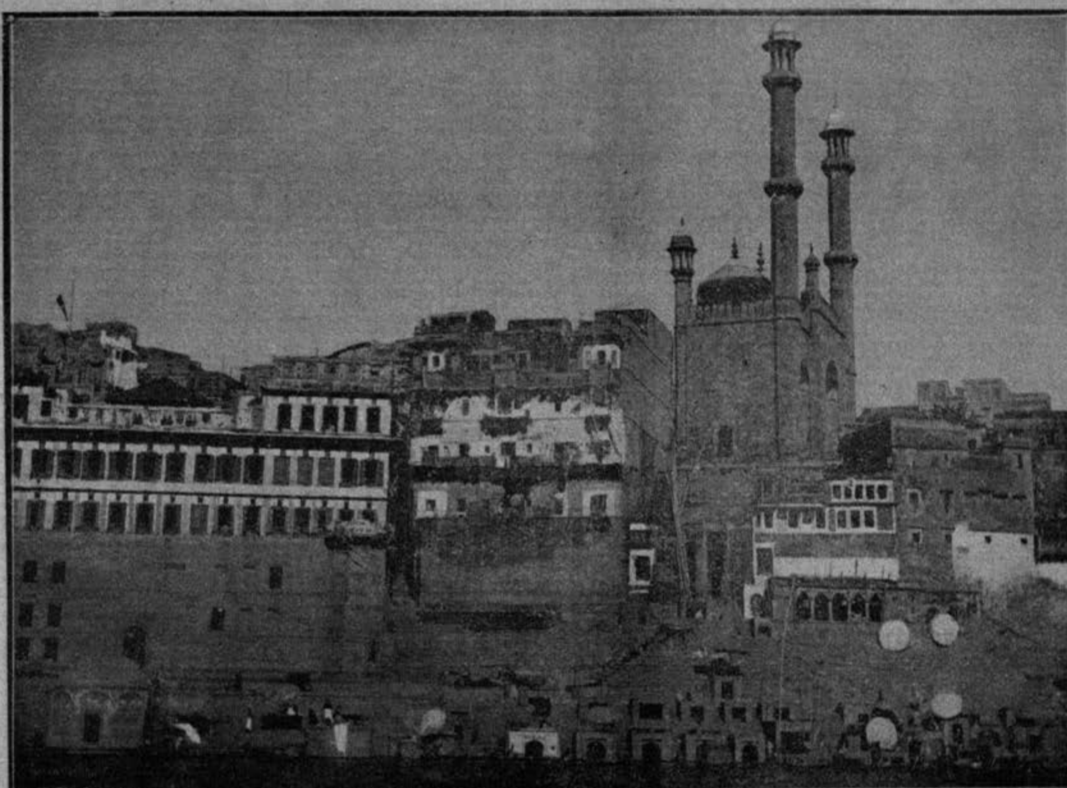
चौखम्भा की मसजिद भी बनारस की प्रसिद्ध मजजिदों में से है। इसका सिर्फ़ कुछ ही हिस्सा मुसल्मानी ढंग का है। इसके प्रायः सारे खम्भे किसी बौद्ध इमारत सें निकाल कर यहां लगाये गये हैं।

दूसरी मशहूर इमारतें।

मानमन्दिर। जयपुर के महाराजा जयसिंह ने हिन्दुस्तान में पाँच वेधशालायें—जयपुर, देहली मथुरा, उज्जैन और बनारस में—बनवाई थीं। बनारस में जो वेधशाला या यंत्रशाला है उसी का नाम मान-मन्दिर है। इसमें जयसिंह के निर्म्माण किये हुए ज्योतिष-विद्या-सम्बन्धी दिगंश-यन्त्र, भित्तियन्त्र, चक्रयन्त्र, और यन्त्रराज आदि यन्त्र हैं। परलोकवासी पण्डित बापूदेव शास्त्री ने इन यन्त्रों के विषय में एक पुस्तक लिखी है। बनारस में मानमन्दिर देखने की चीज़ है; परन्तु यन्त्रों का उपयोग समझानेवाला कोई साथ चाहिए। यन्त्र अच्छी हालत में नहीं हैं।



मानमन्दिर।



वेणीमाधव घाट और उसके पूर्व की ओर औरङ्गज़ेब की मसजिद।

माधवदास का बाग़ शहर के पश्चिम तरफ़ है। इसके भीतर कई मकान हैं; पर अब वे बुरी दशा में हैं। १७८१ ई० में वारन हेस्टिंग्ज़ इसी बाग़ में ठहरे थे और यहीं से चेतसिंह को क़ैद करने का हुक्म आपने दिया था। च्यरी साहब के घातक नवाब वज़ीरअली को भी गवर्नमेंट ने यहीं रहने को जगह दिया था।

महाराजा विजयनगरम् की कोठी और बाग़ भेलूपुरा में हैं। यह भी बनारस में देखने की जगह हैं। कोठी के ऊपर से औरङ्गज़ेब की मसजिद की तरफ़ गङ्गाजी का अच्छा दृश्य देख पड़ता है।

नन्देश्वर की कोठी महाराजा बनारस के अधिकार में है। जनवरी १७९९ में बनारस के जज-मेजिस्ट्रेट डेविस साहब इसीमें रहते थे। जब वज़ीरअली के आदमियों ने (च्यरी साहब को मारने के बाद) उन पर हमला किया था, डेविस साहब ने अपनी मेम और बच्चों को छत पर भेज दिया। आप एक भाला लेकर ज़ीने पर खड़े हो गये और ऐसी बहादुरी से बाग़ियों का मुक़ाबला किया कि उन लोगों को हिम्मत डेविस साहब के पास तक जाने की न हुई। इतने में एक रिसाला आ गया और डेविस साहब मारे जाने से बच गये। वज़ीरअली डेविस साहब की कोठी में आग लगाने जाता था; पर उसका इरादा पूरा न होने पाया।

रामनगर महाराजा बनारस की राजधानी है। रामनगर घाट से गङ्गा पार करके रामनगर जाना होता है। काशिराज का महल देखने के

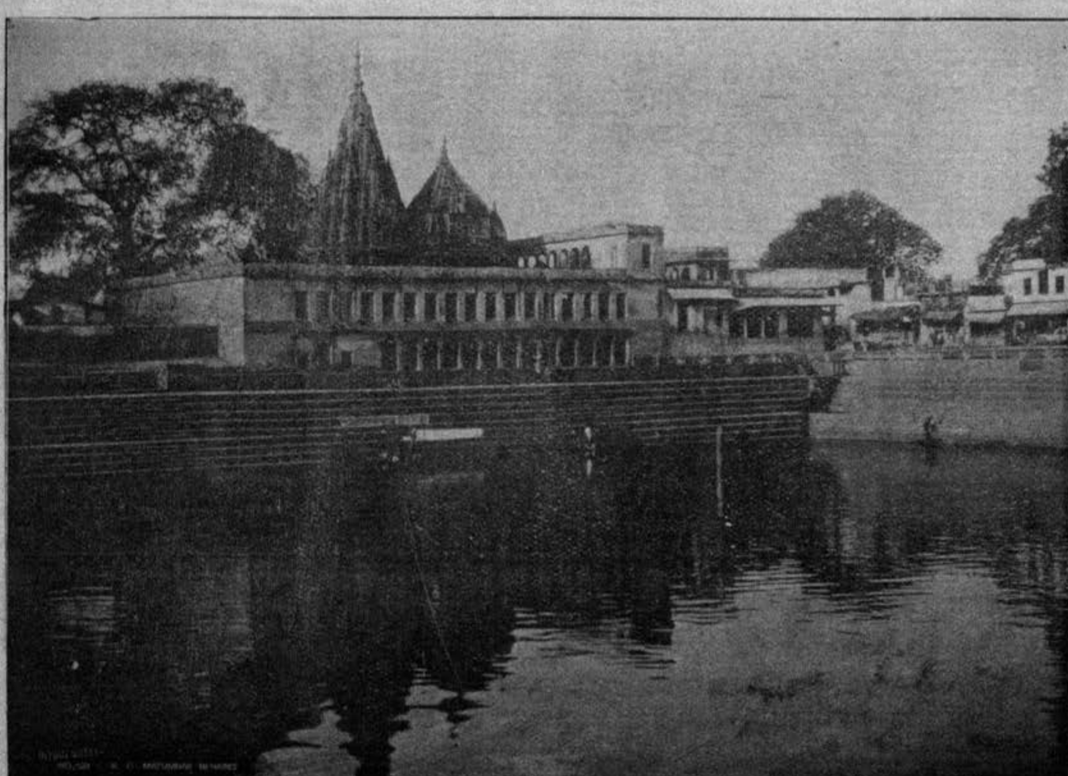
लिए अनुमति की ज़रूरत होती है। महल से एक मील के फ़ासले पर एक सुन्दर तालाब है। तालाब के पूर्व दुर्गाजी का एक मन्दिर है। उस पर रामायण और महाभारत के ऐतिहासिक चित्र खुदे हुए हैं।

टाउन हाल और प्रिंस आफ़ वेल्स का अस्पताल आदि भी बनारस की मशहूर इमारतों में से हैं।

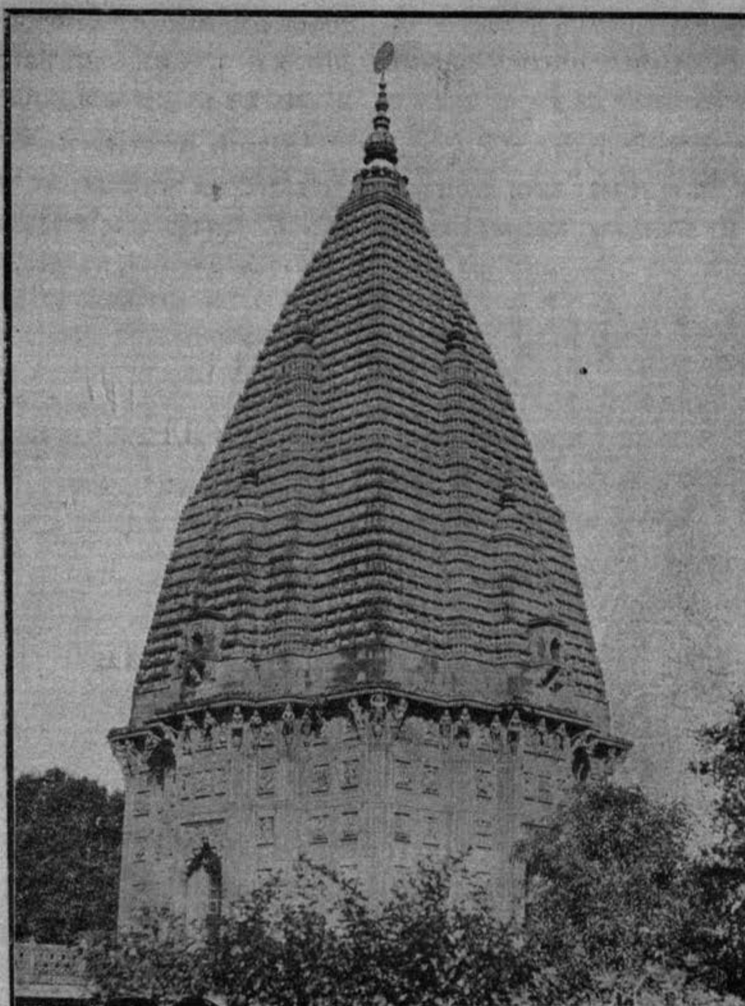
पुरानी इमारतें।

बनारस के उत्तर तरफ़ बौद्धों के ज़माने की इमारतों के भग्नावशेष कहीं कहीं पर अब तक विद्यमान हैं। जो चैत्य या विहार कुछ अच्छी दशा में हैं, वे भी अब अपने पुराने रूप में नहीं हैं। उनको कहीं हिन्दुओं ने अपने ढंग का बना लिया है, कहीं मुसल्मानों ने। मकानों और मसजिदों में कहीं बौद्ध इमारतों के खम्भे लगे हैं; कहीं कुछ, कहीं कुछ। पुरानी बनावट और कारीगरों के चिन्हों से ये चीज़ें पहचानी जाती हैं। किसी किसी पत्थर पर कारीगरों ने गुप्त-राजाओं के समय के अक्षरों में अपने नाम या निशान बनाये थे। वे अब तक बने हुए हैं। उनको देखकर इन चीज़ों की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है।

बकरिया-कुण्ड। शहर के उत्तर-पश्चिम एक महल्ला है। उसका नाम है अलीपुरा। वहां बकरिया-कुण्ड नाम का एक तालाब है। उसके किनारे पुराने ज़माने की इमारतों के बहुत से निशान हैं।



दुर्गाजी का मन्दिर।



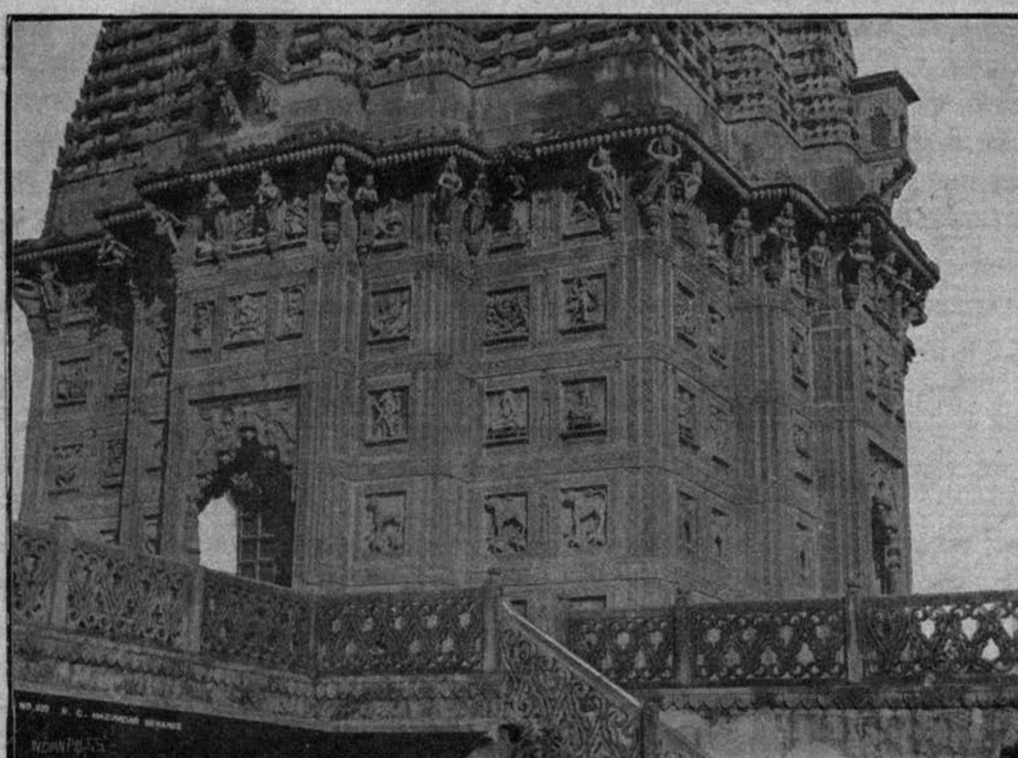
रामनगर में दुर्गाजी का मन्दिर।

वहां कई एक टीले हैं जिनसे जान पड़ता है कि वहां बौद्ध लोगों की इमारतें ज़रूर रही होंगी। कहीं टूटे फूटे खम्भे पड़े हैं; कहीं कलश पड़े हैं; कहीं मूर्तों के भग्नावशेष पड़े हैं। कहीं कहीं पर दीवारें अब तक खड़ी हैं। छतें भी कहीं कहीं पर बनी हुई हैं। वहीं, कुछ दूर पर, एक मसजिद है। उसमें एक शिलालेख फ़ारसी में है। वह फ़ीरोज़-शाह के समय का है। ज़िया अहमद ने उसे १६७५ ईसवी में, बनवाया था। इस मसजिद का प्रायः सभी माल मसाला, हिन्दू और बौद्धों के मन्दिर तोड़ कर, लाया गया है। यहां पर बौद्धों के एक चैत्य का भग्नावशेष अभी तक बना हुआ है। इस चैत्य से कोई दो सौ गज़ के फ़ासले पर एक बौद्ध-मन्दिर भी है। वह कुछ अच्छी हालत में है। उसमें ४२ खम्भे हैं। मुसल्मानों ने कृपा करके उसमें कुछ जोड़जाड़ कर उसका मक़बरा बना डाला है।

तिलिया नाला और राजघाट के क़िले में भी बौद्धों के प्राचीन विहारों और चैत्यों के चिन्ह अभी तक बने हुए हैं।

लाटभैरव राजघाट के क़िले से कोई एक मील है। वहां पर एक बड़ा सा तालाब है। उसके किनारे एक लाट या खम्भा है। उसे लोग लाट-भैरव कहते हैं। उस पर ताँबा मढ़ा हुआ है। ऊँचाई उसकी बहुत थोड़ी है। पर जिस पत्थर के खम्भे का यह टुकड़ा है, वह कोई ४० फुट ऊंचा रहा होगा। पुरानी इमारतों के विषय में जानकारी रखनेवालों का यही अनुमान है। मुसल्मानों ने उसे तोड़ फोड़ कर छोटा कर दिया है। यह स्तम्भ पहले एक मन्दिर के प्राङ्गण में था। मन्दिर को औरङ्गज़ेब ने तुड़वा डाला और वहीं पर एक मसजिद बनवाया। यह स्तम्भ उस मसजिद के हाते में था। सम्भव है यह अशोक का कीर्ति-स्तम्भ हो और इस पर उसके अनुशासन खुदे रहे हों।

सारनाथ में किसी समय बौद्धों का बड़ा दौर-दौरा था। यह जगह बनारस से कोई तीन मील उत्तर है। उसके पास बङ्गाल-नार्थ-वेस्टर्न रेलवे (गोरखपुर लाइन) का स्टेशन भी है। बनारस में लोग इसे धमेख कहते हैं। जनरल कनिंगहम के मत में सारनाथ नाम सारङ्गनाथ का अपभ्रंश है। सारङ्गनाथ का अर्थ "हिरनों का मालिक" अर्थात् बुद्ध भी हो सकता है और महादेव भी हो सकता है। कहते हैं, किसी समय, यहां पर मृगदाव नाम का जङ्गल था और बुद्ध, अपने किसी पूर्वजन्म में, हिरनों के राजा के रूप में, यहां फिरे थे। गया में



रामनगर के मन्दिर में पच्चीकारी का नमूना।

बोधिसत्वता को प्राप्त होकर, शाक्य मुनि ने, इसी जगह, सबसे पहले, बौद्धमत प्रचलित करने का यत्न किया था।

चीन के बौद्धपरिव्राजक फा हियान (३९९ ई० में) और हुएनसङ्ग (६२९-६४५ ई० में), दोनों ने, सारनाथ का वर्णन किया है। पिछला इसके विषय में इस प्रकार लिखता है—"बनारस के उत्तर-पश्चिम अशोक का एक स्तूप है। वह १०० फुट ऊंचा है। वहां एक बहुत बड़ा संघाराम है। वह आठ हिस्सों में बँटा हुआ है। उसके चारों तरफ़ दीवार है। उसके भीतर दोमंज़िले कई महल हैं और एक विहार भी २०० फुट ऊंचा है। स्तूप के चारों तरफ़ छोटी छोटी १०० कोठरियों की एक लाइन है। हर कोठरी में एक एक मूर्ति बुद्ध की है। मूर्तियां सुवर्णखचित हैं। विहार के पास अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप है। उसके सामने ७० फुट ऊंचा एक स्तम्भ है। जहां स्तम्भ है, वहीं बुद्ध ने पहले पहले धर्म्मोपदेश किया था। यहां पर तीन तालाब हैं। मठ से थोड़ी दूर पर एक और स्तूप है। वह ३०० फुट ऊंचा है। उसमें अनेक रत्न लगे हुए हैं"।

इस समय सारनाथ में दो स्तूपों के अवशिष्ट अंश हैं। एक धमेख (धर्म्मोपदेशक ?) जो पत्थर का है, दूसरा चौखण्डी जो ईंटों का है। दोनों में कोई आध मील का अन्तर है। बीच की जगह टीले के आकार में ख़ाली पड़ी है। उसमें ईंट, रोड़े, पत्थर और पुरानी मूर्तियों के टुकड़े इधर उधर पड़े हुए हैं। उसके पूर्व, नरोकर या सारङ्ग-ताल नाम का एक बहुत बड़ा तालाब है। धमेख से दक्षिण-पश्चिम की तरफ़ जैनियों ने पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनवाया है।

धमेख को जिस समय जनरल कनिंगहम ने नापा, उस समय वह ११० फुट ऊंचा था। उसका घेरा, नीचे, ९३ फुट था। ४३ फुट की उँचाई तक यह स्तूप पत्थर का है; उसके ऊपर ईंट का। स्तूप के चारों तरफ़ जो मूर्तियों के रखने की जगह हैं, वे सब ख़ाली हैं। उनमें पूरे क़द की बुद्ध की मूर्तियां किसी समय रही होंगी। पत्थरों में फूल, पत्ती और मनुष्यों के चित्र कहीं कहीं पर खुदे हुए अभी तक बने हैं।

१७९४ ई० में राजा चेतसिंह के दीवान जगतसिंह ने, धमेख से १४० गज़ के फ़ासले पर, एक जगह खुदवाई। उससे जो ईंट पत्थर निकला, वह जगतगञ्ज बनाने के काम में आया। जो जगह खोदी गई, वहां पर, ज़मीन के भीतर, एक दालान निकली। उसमें, खोदने पर, दो बक्स निकले। एक पत्थर का था, दूसरा सङ्गमरमर का। उनमें मनुष्य की कुछ हड्डियां और कुछ गले हुए मोती और सोने के वर्क़ वग़ैरह निकले। बुद्ध की एक मूर्ति भी निकली। उस पर १०८३ सम्बत् का एक लेख था। वह गौड़-नरेश महीपाल के समय का था।

चौखण्डी का दूसरा नाम लोरी की कुदान है। यह एक ऊंचा टीला है। इस पर एक अठकोनी मण्डपी या मढ़ी है। उसके एक दरवाज़े पर फ़ारसी में एक लेख खुदा हुआ है। उसमें लिखा है कि हुमायूं बादशाह एक बार इस टीले पर चढ़ा था। उसीकी यादगार में यह मण्डपी बनाई गई है। कनिंगहम साहब की राय में यहीं पर वह स्तूप रहा होगा जिसकी उँचाई होएनसंग ने ३०० फुट बतलाई है।

सारनाथ के टीलों को खोदने पर जो चीज़ें पुराने ज़माने की मिली हैं, वे साबित करती हैं कि किसी समय यहां पर बौद्धों का बहुत बड़ा संघाराम था। दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में, जब बौद्ध यहां से निकाले गये हैं, इन इमारतों में आग लगा दी गई थी। ख़ाक, बाल, हड्डियां, छिपाई हुई मूर्तें, खाने की चीज़ें, गड़े हुए बर्तन, इत्यादि जो यहां पर निकले हैं, वे सिद्ध करते हैं कि अकस्मात् आग नहीं लगी; किन्तु किसीने जानबूझ कर सारनाथ की बस्ती को अच्छी तरह जलाया था।

सारनाथ एक बहुतही प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान बनारस में है। गवर्नमेंट ने वहां पर एक

जगह बनवाकर, जो जो चोज़ें वहां ज़मीन से निकली हैं, सब रखवा दी हैं। पहले यहां की बहुत सी ऐतिहासिक चीज़ें क्वीन्स कालेज के हाते में रक्खी थीं। शायद वे भी सब अब यहीं आगई हैं। इससे दर्शक उन्हें यहीं देख सकते हैं। अभी, कुछ दिन हुए, वहां और भी बहुत सी चीज़ें ज़मीन से निकली हैं। स्तूपों की मरम्मत करने, उनको रक्षित रखने और नई नई जगहों पर खोद कर पुरानी चीज़ों को ढूंढने का प्रबन्ध अभी तक गवर्नमेंट की तरफ़ से जारी है। इस विषय में युक्त-प्रान्त की गवर्नमेण्ट के अण्डर-सेक्रेटरी ने अपनी २८ अगस्त की चिट्ठी के साथ जो रिपोर्ट, माँगने पर, हमारे पास भेजी है, उसकी नक़ल हम नीचे, *पाद-टीका में, देते हैं।

कालेज, पाठशाला, छापेख़ाने आदि।

क्वीन्स कालेज बनारस का प्रसिद्ध कालेज है। इसकी इमारत देखने लायक़ है। १७९२ ईसवी में यह जारी हुआ था। इसकी वर्तमान इमारत, १८५३ ईसवी में, १,२७,००० रुपये की लागत से बनी। पहले वह संस्कृत कालेज कहलाता था। इसमें संस्कृत और अँगरेज़ी दोनों में ऊँचे दरजे तक की शिक्षा दी जाती है। इसका संस्कृत-विभाग अलग है। कालेज के हाते में ३१½ फुट ऊंचा एक स्तम्भ है। उस पर एक लेख गुप्तवंशीय राजाओं के समय के अक्षरों में है। इस कालेज के पुस्तकालय में अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ हैं; विशेष करके पुरातत्व-विषयक।

हिन्दू-कालेज। बनारस में एक नया कालेज एनी ब्यसण्ट के प्रयत्न से बना है। सुनते हैं इसमें हिन्दुओं की पुरानी पद्धति के अनुसार धर्म्म-शिक्षा भी दी जाती है। पर इसके कार्य्यकर्ताओं में से थियासफ़िस्ट ही अधिक हैं। कालेज का प्रबन्ध, लोग कहते हैं, अच्छा है। इसका एक बोर्डिंग् हाउस भी है। काश्मीर-नरेश की संस्कृत पाठशाला भी इसी कालेज में है। उसका भी प्रबन्ध इसी कालेज के अधिकारियों के हाथ में है।

इनके सिवा, बनारस में और भी कई स्कूल हैं। बनारस संस्कृत का घर है। वहां संस्कृत की कई एक पाठशालायें हैं। बनारस के प्रसिद्ध पण्डित शिवकुमार शास्त्री महाराजा दरभङ्गा की पाठशाला में हैं।

बनारस में सिर्फ़ एकही पुस्तकालय नाम लेने लायक़ है। वह ज्ञानवापी के पास है। उसका नाम है कारमाइकल लाइब्रेरी। उसमें पुस्तकों का अच्छा संग्रह है।

बनारस में कई छापेख़ाने हैं। उनमें से मेडिकल हाल प्रेस, तारा प्रेस, चन्द्रप्रभाप्रेस, यज्ञेश्वर प्रेस और भारतजीवन प्रेस मुख्य हैं। मेडिकलहाल प्रेस से "पण्डित" नामक संस्कृत की प्रसिद्ध

---

* Copy of report in connection with the excavation of ancient ruins at Sarnath near Benares.

Sarnath Stone Stupa (Dhamekh).

The jungle round the Stupa has been cleared and the grounds levelled and unsightly ditches filled up. An estimate for repairing the stone portion of the Stupa is under preparation,

A new stone-shed called the "Museum" was also constructed on a design furnished by Mr. F. O. Oertel, Executive Engineer, in purely Hindu style. The construction of the shed was commenced in the previous year and was completed during the year under review. The old Buddhist sculptures are now kept in this Museum.

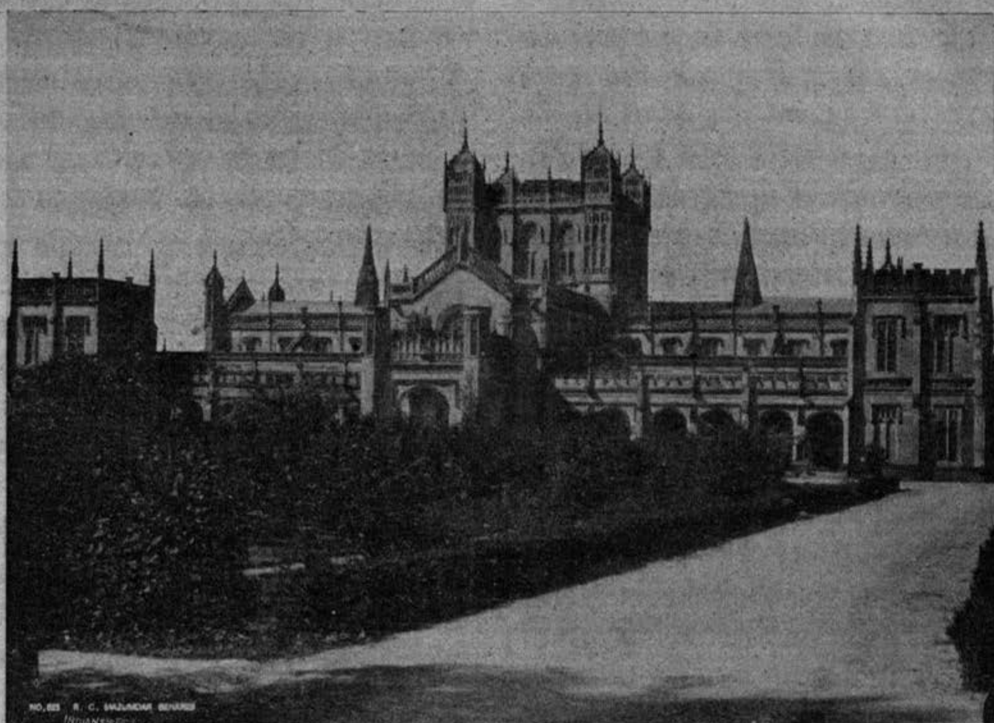
Excavations of the ancient ruins at Sarnath were carried out under the instructions of Mr. Oertel. A number of Buddhist Stupas, a large Vihara, and traces of many Buddhist shrines, were uncovered, together with a large number of sculptures of stone, terracotta, and plaster, of great archaeological interest. The most interesting of these latter are (1) a magnificently well finished column with an inscription which fixes it to the period of Asoka; (2) a huge umbrella, 10 feet in diameter, the inside of which is elaborately carved with scrolls and symbols; (3) several colossal statues; (4) a stone railing characteristic of the Buddhist period; and (5) several sculptures with inscriptions.

All the important sculptures have been kept in the museum.

Chaukhandi at Sarnath.

In the brick Stupa known as Chaukhandi, a well shaft was dug by Mr. Cunningham and left open. To avoid accidents, a stone railing was erected around this. A zigzag path was also made around the brick ruins, providing an easy way up to the brick Stupa.

The ground near the Stupa also contains traces of ancient ruins; so it was considered desirable to acquire it. Moreover with a view to ascertain the nature of the foundation and superstructure of the ancient Buddhist ruins on which the brick Stupa stands, some excavations were carried out, and plans of the traces of wells discovered made under instructions of Mr. Oertel.



कुइन्स कालेज।

सामयिक पुस्तक निकलती है। हिन्दू कालेज की मैगेज़ीन ताराप्रेस में छपती है। मित्रगोष्ठी पत्रिका नामक संस्कृत-मासिक पुस्तक यज्ञेश्वर प्रेस में छपती है। भारतजीवन नामक हिन्दी का साप्ताहिक अख़बार अपने नाम के छापेख़ाने से निकलता है। कई एक उपन्यासमय मासिक पत्र भी हिन्दी में बनारस से निकलते हैं। बनारस से "चैाखम्भा संस्कृत सीरीज़" नामक एक सामयिक पुस्तक संस्कृत में निकलती है। इसमें अच्छे अच्छे ग्रन्थ छपते हैं। इस प्रान्त में हिन्दी लिखने पढ़ने की चर्चा सबसे अधिक बनारस में है। यहां से प्रायः हर महीने हिन्दी की एक आध नई पुस्तक निकलती है। पर इन पुस्तकों में से, बँगला के आधार पर लिखी गई, क़िस्से कहानी की पुस्तकों ही की संख्या अधिक होती है।

नागरी-प्रचारिणी सभा।

कोई बारह वर्ष हुए, स्कूल के कुछ लड़कों ने मिल कर, एक सभा बनाई ग्रैार उसका नाम नागरी-प्रचारिणी रक्खा। नागरी अक्षर ग्रैार हिन्दी भाषा दोनों का प्रचार करना इसका उद्देश्य है। पर इसके नाम से इसके दोनों उद्देश्य नहीं सूचित होते। इसने, इतने दिनों में, अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। पाँच छ सौ सभासद भी इसके हो गये हैं। इसने अपना मकान भी एक अलग बनवा लिया है। यह हिन्दी की पुरानी पुस्तकों का खोज लगाती है; अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करती है; हिन्दी में व्याख्यान दिलवाती है; ग्रैार अन्य भी बहुत सी बातें करती है। इस सभा का एक उसूल—सिद्धान्त—बिलकुल ही नया है। वह यह है कि, दूसरों के विषय में

यह जो कुछ कहती है, उसे यह समालोचना समझती है; पर इसके विषय में ग्रैार कोई जो कुछ कहता है, उसे यह ग्रपवाद, या व्यर्थ निन्दा, समझती है। उदाहरण—यदि सभा कहे कि हिन्दी-ग्रख़बारों के सम्पादकों ने यूनीवरसिटी, ग्रर्थात् विश्वविद्यालय, के बरामदे में क़दम नहीं रक्खा; ग्रथवा उनमें सभा के खोज की रिपोर्ट पढ़कर समझने की लियाक़त नहीं; ग्रथवा उनकी दृष्टि सङ्कीर्ण है, वे उपकारी उद्योगों का विरोध करते हैं, वे तुच्छ समाचारों पर लम्बे लम्बे लेख लिखते हैं,—तो यह कहना विशुद्ध समालोचना है। पर यदि ग्रख़बारों के सम्पादक या ग्रैार कोई कहें कि सभा हिन्दी-पुस्तकों के खोज का काम ग्रच्छी तरह नहीं करती; ग्रथवा जो बात वह कहती है, उस पर स्थिर नहीं रहती; ग्रथवा, किसी किसी काम के लिए वह एक की जगह दो ग्रादमी व्यर्थ रखती है,—तो वह विशुद्ध ग्रपवाद, ग्रर्थात व्यर्थ निन्दा, है!

राजटीका।

लाड़लीप्रसाद के साथ कलावतो का जब विवाह हुग्रा, तब होम के धुवें की ग्राड़ से भगवान प्राजपति ने तनिक सा मुसकरा दिया था। हा, प्रजापति के लिए वह बात चाहे खेल ही क्यों न हो, हम लोगों के लिए वह हँसो की चीज़ नहीं हो सकती।

लाड़ली के पिता पूरनमलजीने ग्रङ्गरेज़ी सरकार में बहुत बड़ा नाम पैदा कर लिया था। ग्रपार सरकार-सागर में बड़ी फुर्त्ती से सलामों का पतवार चला चला कर वे राय बहादुरी की ऊंची रेतोली चट्टान पर पहुँच गये थे। ग्रैार भी दुर्गमतर सम्मान-शिखर तक पहुंच जाने की शक्ति उनमें थो; परन्तु पचपन साल की ग्रवस्था में, सामने थोड़ी ही दूर पर स्थित, राज-ख़िताब रूपी कोहरे से ढके हुए पर्वत की धुँधली चोटी पर, चाह भरी दृष्टि डालते ही, वे ग्रकस्मात् ख़िताब-वर्ज्जित लोक को चल बसे; ग्रैार उनकी बहु-सलाम-शिथिल [सलाम करते करते ढीलो पड़ो हुई] गरदन की गांठ श्मशान की सेज पर ग्राराम करने लगी।

परन्तु, विज्ञान कहता है कि शक्ति के स्थान ग्रैार रूप मात्र में ग्रन्तर हो जाता है, उसका नाश नहीं होता। चञ्चला लक्ष्मी को ग्रचञ्चला सखो, सलाम-शक्ति, पिता के कंधे से उतर कर पुत्र के कंधे पर चढ़ बैठी ग्रैार लाड़ली का नवीन मस्तक गंगा जी के लहरों में उतराते हुए नारियल की तरह ग्रङ्गरेज़ों के द्वार पर बिना विश्राम के बार बार चढ़ने उतरने लगा।

लाड़ली की पहलो स्त्री मर गई। दूसरी बार जिस घर में उसको विवाह करना पड़ा, उसका इतिहास दूसरी तरह का है।

लाड़ली की ससुराल में ज्वालाशङ्कर ग्रपने जान पहचान वालों में सबके प्यारे थे। घर बाहर, सब जगह, सब लोग, सब बातों में, उनको ग्रनुकरण के योग्य मानते थे।

ज्वालाशंकर विद्या में बी० ए० ग्रैार बुद्धि में विचक्षण थे; परन्तु भारी नौकरी चाकरी की चाह उनको तनिक भो न थी। उनका कोई बड़ा मुरब्बी या सिफ़ारिश करने वाला भी न था; क्योंकि ग्रङ्गरेज़ उनको ग्रपने पास से जितनी दूर रखते, वह भी ग्रङ्गरेज़ों को उतनी ही दूर रखते थे। इसलिए, ज्वालाशंकर ग्रपने घर की चहार दीवारी के ग्रन्दर, ग्रैार मेल मुलाक़ातवालों को मंडली ही में चमका करते थे। दूरवालों की दृष्टि ग्राकर्षण करने की शक्ति उनमें नहीं थी।

ज्वालाशंकर एक बार तीन वर्ष के लिए विलायत की हवा भी खा ग्राये थे। वहां ग्रङ्गरेज़ों की भलमनसाहत ग्रैार ख़ातिरदारी से भारतवर्ष

का सारा दुःख अपमान भूलकर अंगरेज़ी साज पहन कर वे देश लैाट आये।

ज्वालाशंकर के भाई बहिन पहले पहले उनको देखकर थोड़ा बहुत सकुचाया करते। परन्तु दे चार दिन बाद वही कहने लगे कि भाई साहब, अंगरेज़ी लिबास में आप जैसे अच्छे लगते हैं, दूसरा कोई वैसा अच्छा नहीं लगता। अंगरेज़ी वस्त्रों का घमंड धीरे धीरे घर भर में फैलने लगा।

ज्वालाशंकर विलायत से लैाटते समय सोचने लगे कि अंगरेज़ों के साथ बराबरी करके रहने का अपूर्व दृष्टान्त मैं घर लैाटकर सबको दिखलाऊंगा। बग़ैर सिर नीचा किये अंगरेज़ों के साथ मेल नहीं हो सकता, जो लोग ऐसी बात कहते हैं, वे अपनी ही हीनता प्रकाशित करते हैं और अंगरेज़ों को भी झूठ मूठ बदनाम करते हैं।

विलायत के बड़े बड़े लोगों के बहुत से आदर-पत्र ले आने से हिन्दुस्तानी अंगरेज़ों में भी ज्वालाशंकर का आदर होने लगा। कभी कभी अंगरेज़ों के यहां चाय, खाना, और खेल तमाशों का हिस्सा उनको, और उनक स्त्री को भी, मिलने लगा। सौभाग्यमद की मत्तता धीरे धीरे उनकी नस नस में सन सन करती हुई चढ़ने लगी।

उन्हीं दिनों, एक नई रेल की सड़क खोली जाने के अवसर पर, रेलवे कम्पनी के न्योते में, छोटे लाट साहब के साथ बहुत से राज-प्रसाद-गर्वित बड़े बड़े देसी आदमी भी गाड़ियों में लद लद कर नई लैन पर जाने लगे। ज्वालाशंकर भी उनमें से थे।

लैाटती बार एक अँगरेज़ दारोग़ा ने देसी मान्य पुरुषों को बहुत अपमानित करके एक विशेष गाड़ी पर से उतार दिया। अँगरेज़ी वस्त्र पहने हुए ज्वालाशंकर भी यह सब देख सुन कर, पहले ही से, अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए, गाड़ी से उतरने लगे। उनको उतरते देख दारोग़ा ने कहा, "आप क्यों उतरते हैं? आप बैठे न रहिए।"

इस विशेष सम्मान से ज्वालाशंकर पहले बहुत फूल उठे। परन्तु जब गाड़ी खुल गई, जब सूखे धुंधले मैदान की पश्चिमी सीमा से छिपते हुए सूर्य की धीमी किरणें सिर नीचा किये हुए, लज्जित हुए की भांति लाल होकर, सारे देश में फैलने लगीं, और जब अकेले बैठे, खिड़की से मुंह निकाले, टकटकी बांध कर चुपचाप देखते हुए, ज्वालाशंकर, जंगल-पहाड़ों में मुंह छिपाती हुई भारत जननी की दशा सोचने लगे—तब, धिक्कार से उनका हृदय फटने लगा, और दोनों आंखों से अग्नि-ज्वाला से तपी हुई आंसुओं की धारा बहने लगी।

उनको एक कहानी याद पड़ी। एक गधा, किसी देवता की मूर्त्ति लादे हुए, एक रथ को खींच कर बाज़ार से लिये जाता था। राहो लोग उसके सामने धूल में लोट लोट कर देव-मूर्त्ति को दंडवत करने लगे। परन्तु उस मूढ़ गधे ने समझा कि सब लोग मुझे ही साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहे हैं।

ज्वालाशंकर सोचने लगे कि मुझमें और गधे में इतना ही अन्तर है कि मैंने आज समझ लिया कि यह सम्मान मुझे नहीं, मेरी देह पर लदे हुए बोझे को मिला है; पर गधे ने नहीं समझा। घर आकर ज्वालाशंकर ने घर भर के लोगों को अपने बड़े आंगन में बुलाया, और बबूल के चैलों का एक बहुत बड़ा अलाव जलाकर उसमें सब विलायती वस्त्रों को एक एक करके स्वाहा कर दिया।

इस विलायती-वस्त्र-होम की शिखा जितनी ही अधिक ऊंची चढ़ने लगी, लड़के उतना ही अधिक कूद कूद कर, ताली बजा बजा कर, अग्नि की प्रदक्षिणा करने लगे। तब से ज्वालाशंकर ने अँगरेज़ों के घर का चाय का प्याला, या रोटी का टुकड़ा, छूने की क़सम खा ली। फिर कभी उन्होंने अपने घर से बाहर क़दम न रक्खा।

दुर्भाग्यवश लाड़लीप्रसाद का विवाह इसी परिवार में, ज्वालाशंकर की एक बहिन के साथ, हुआ। घर की लड़कियां, सब की सब जैसी अच्छी

तरह लिखी पढ़ी थीं, देखने में भी वे वैसी ही सुन्दर थीं। लाड़ली ने सोचा, मैंने ख़ूब बाज़ी मारी है।

परन्तु मुझे पाकर तुम लोगों ने भी बाज़ी मारी है, इस बात के समझा देने में लाड़ली ने कसर न की। यह बतलाने के लिए कि किस साहब ने बाबू जो को कब कैसी चिट्ठी लिखी थी,—मानों भूल से आपही आप जेब से निकल निकल कर, एक एक चिट्ठी, आज इस साली के, कल उसके, हाथ में चली जाती। और सालियों के कोमल लाल लाल ओठों में तीखी धार वाली हँसी, लाल मख़मली मीयान के भीतर चमकते हुए छुरे की तरह, झलकने लगती। तब देश, काल और पात्र के विषय में उस हतभाग्य को चेतना हुई। वह मन में कहने लगा, बड़ी भारी ग़लती हो गई।

साली-मंडली में सबसे बड़ी लीलावती ने, एक दिन, शुभ मुहूर्त्त देखकर, लाड़ली के कमरे में सजा सजाया एक बढ़िया सिंहासन बिछाकर, उस पर सिन्दूर से रँगे हुए दो जोड़े विलायती बूट रख दिये। और उन पर फूल चन्दन चढ़ा कर, सामने दो बड़े बड़े दीपक और धूपपात्र जला दिये। जब लाड़ली कमरे में आया, दोनो ओर से दो सालियों की जोड़ी ने उसके दोनों कान पकड़ कर, सिंहासन के सामने उसका सिर झुका कर कहा —अपने इष्ट देवता को प्रणाम करो; उनके आशीर्वाद से तुम्हारा पद बढ़े।

तीसरी साली शीलवती ने कई दिनों तक बड़े परिश्रम से एक चादर पर, जोन्स, स्मिथ, ब्राउन, टामसन, इत्यादि एक सौ अंगरेज़ी नाम, लाल धागे से काढ़े, और एक दिन बड़ी धूम धाम से उसने लाड़ली को वह चादर उढ़ा दी। चौथी साली प्रेमवती उम्र के हिसाब से किसी गिनती में न थी। परन्तु उसने भी कहा, भाई साहब, मैं आपके लिए एक माला गूंथ दूंगी; आप उससे साहब लोगों का नाम जपा करना।

उसकी बड़ी बहिनों ने उसे धमका कर कहा, जा, चिबिल्लीपन मत कर।

लाड़ली के मन में ग़ुस्सा भी आता, और लज्जा भी आती। परन्तु उन लोगों से हटने को जी भी न चाहता। तिस पर बड़ी साली बहुत ही अधिक सुन्दरी थी। उसमें जितना मधु था, उतने ही कांटे भी थे। उनकी मादकता और खरकन दोनों का, मन में, एक ही साथ असर होता था। पतंगा पंख जल जाने पर क्रोध से भन भन करता है; तिस पर भी वह अन्धे की तरह दीपक के चारोंओर घूमा ही करता है। इस तरह वह वहीं मरता भी है।

निदान साली-संसर्ग के प्रबल मोह में गोता मार कर साहबी प्यार की लालसा लाड़ली बिलकुल नकारने लगा। जिस दिन वह बड़े साहब को सलाम करने जाता, सालियों से कहता कि सुरेन्द्रनाथ बाबू आये हैं, मैं उनकी वक्तृता सुनने जाता हूं। नैनीताल से उतरे हुए छोटे साहब को स्टेशन पर सम्मान-निवेदन करने जाता तो कहता कि मैं छोटे मामा जो से मिलने जाता हूं।

साहब और साली, इन दो नावों पर पैर रखकर खड़ा हुआ बेचारा लाड़ली बड़े भारी सङ्कट में फँस गया। सालियां मन ही मन कहने लगीं, तुम्हारी दूसरी नाव के तले बिना छेद किये हम तुम्हारा पिंड न छोड़ेंगीं।

कुछ दिनों में ख़बर उड़ी कि महारानी के अगले जन्म दिन पर लाड़लीप्रसाद ख़िताब नाम वाले स्वर्गलोक की पहली सीढ़ी, रायबहादुरी, पर पैर रक्खेंगे। परन्तु ऐसा आनन्द-समाचार, वह बेचारा डरपोक लाड़ली, अपनी सालियों को न सुना सका। जब उससे और न रहा गया, तब, एक दिन खिली हुई चाँदनी में चित्त के आवेग को रोकने से असमर्थ होकर अपनी स्त्री से उसने वह समाचार कह ही डाला। स्त्री ने ज्यों त्यों रात बिताई। दूसरे दिन, पालकी में बैठ, आंखों में आंसू भर, वह अपनी बड़ी बहिन के घर जा पहुंची। लीलावती ने कहा, हर्ज क्या है, राय बहादुर होकर तेरे स्वामी के पीछे पूंछ थोड़े ही निकल आवेगी? तुझे क्यों इतनी शरम लग रही है?

कलावती बार बार घबराकर कहने लगी, नहीं बहिन, और चाहे जो हो जाऊं, मैं रायबहादुरनी न बन सकूंगी।

लीलावती ने ढाढ़स देकर कहा, अच्छा, तू इस बात की कुछ फ़िकर मत कर।

लीलावती के स्वामी रतनचन्द किसी पहाड़ी ज़िले में विकालत करते थे। कुछ दिनों बाद लाड़ली के नाम वहीं से न्योता पहुंचा। वह भी आनन्द से रेल में बैठकर वहां तुरन्त जा पहुंचा। रेल में चढ़ते समय उसका बांया अंग नहीं फड़का। और यदि फड़का भी हो, तो आनन्द में मग्न होने के कारण उसने उसकी कुछ परवा न की।

पहाड़ी नगर की ठंढी ठंढी वायु से लीलावती का स्वास्थ्य और भी अच्छा हो गया था। सुन्दरता की लाली उसके खिले हुए मुखड़े पर यों झिलमिला रही थी, जैसे शरद् ऋतु में किसी निर्जन नदी के किनारे काश का जंगल मन्द मन्द वायु में लहलहाया करता है।

उसे देखकर लाड़ली की मोहित हुई आंखों पर, मानो सिर से पैर तक फूलों से लदी हुई मालती लता, ओस की बूंदें बरसाने लगी।

मन के आनन्दित होने और पहाड़ की वायु से लाड़ली का अजीर्ण रोग दूर होगया। स्वास्थ्य के नशे से, सुन्दरता के मोह से, लीलावती की पल पल की ख़ातिरदारी से, वह मानो पृथ्वी को छोड़ आकाश पर पैर रख कर चलने लगा। घर के सामने एक बाग़ीचा था। उस के नीचे ही से एक नदी बहती थी। वह मानो लाड़ली ही के चित्त की चञ्चलता के प्रबल वेग से हहाती हुई दौड़ा करती थी।

सवेरे नदी के किनारे घूमते समय ठंढी ठंढी सुगन्ध भरी पहाड़ी हवा, प्रियतम से मिलने के आनन्द की तरह, उसके सारे शरीर को प्रफुल्लित कर देती थी। फिर, घर लौट कर, लीलावती के काम काज में, कभी कभी रसोई पानी में भी, लाड़ली खुद सहायता करने लगते और बात बात में उसके सामने अपना फूहरपन दिखलाया करते। नित्य अपने को बात बात में अपराधी बनाने के कारण आपको जो धमकियां और ताड़नाएं मिलतीं, उनसे मानो आपका जी ही नहीं भरता था।

फिर, थोड़ी देर में, एक ओर भूख की ताड़ना दूसरी ओर साली जी का आग्रह,—रसोई का रसीलापन, और रसोई बनानेवाली की सेवा की मिठास, इन सब के संयोग से आपको भोजन के कार्य्य में वज़न का ध्यान बहुत कम ही रहता था।

इसी तरह बड़े ही आनन्द से श्रीयुत लाड़लीप्रसाद का समय बीतने लगा। पृथ्वी की सारी बातें वह भूल गया। यहां तक कि, साहब लोगों का कृपा-कटाक्ष ही मानवी जीवन का अन्तिम उद्देश्य है, यह बात भी उस समय उसको याद न रही। प्यारे मित्रों की श्रद्धा और स्नेह से कैसा सुख और आनन्द मिलता है, वह, बस, इसीको सोचा करता।

इसके सिवा, एक और नई बात उसके देखने में आई। रतनचन्दजी कचहरी के बड़े वकील होने पर भी अंगरेज़ों से मिलने नहीं जाते थे। जब इस पर कोई बात छिड़ती तो वे कहते, क्या ज़रूरत है? भाई, अगर वे मेरी ख़ातिरदारी न करें, तो मुझे कितना दुःख होगा। क्या वे भी मुझसे मिलने आवेंगे?

लाड़ली भी यहां आकर इन लोगों के नये दल में मिल गया। उसको परिणाम की चिन्ता न रही। पिता की और अपनी मेहनत से पहले ही जो खेत जोत बोकर तैयार किया गया था, राय बहादुरी की सम्भावनारूपी बेल उसीमें आपही आप बढ़ने लगी; उस खेत में नये सिरे से जल सींचने की आवश्यकता अब न रही। लाड़लीप्रसाद ने अंगरेज़ों के लिए उनके किसी प्यारे नगर में एक घुड़दौड़ की जगह बनवा दी थी।

इतने में कांग्रेस का समय पास आ पहुंचा। रतनचन्द के पास भी चन्दा जमा करने के लिए चिट्ठी आई। लाड़लीप्रसाद लीलावती के साथ बड़े

आनन्द से ताश खेल रहे थे। वहीं रतनचन्द चन्दे की किताब लाकर कहने लगे, भाई, तुमको भी इस पर कुछ लिखना चाहिए। यह सुन कर, पहले संस्कार के कारण, लाड़लीप्रसाद का चेहरा सूख गया। लीलावती ने घबरा कर कहा, ख़बरदार, ऐसा काम मत करना। तुम्हारा घुड़-दौड़ का मैदान मिट्टी में मिल जायगा। लाड़ली-प्रसाद इस ताने का न सह सका। उसने ज़ोर से कहा, हां, हां, उसीकी सोच में तो रात भर मुझे नींद नहीं पड़ती! रतनचन्द ने ढाढ़स देकर कहा, तुम्हारा नाम किसी अख़बार में नहीं छापा जायगा।

लीलावती ने सोच विचार कर कहा, नहीं, नहीं, क्या ज़रूरत है? क्या जाने कहीं कोई बात ही बात में——

लाड़ली ने बड़े ज़ोर से दपट कर कहा, अख़बार में नाम छप ही जाय तो क्या होगा? यों कह कर और रतनचन्द के हाथ से किताब खींच कर उसने खट से एक हज़ार रुपये लिख दिये। वह मन ही मन कहने लगा, यह बात अख़बार में थोड़े ही छपेगी।

लीलावती ने अपने सिर पर हाथ रखकर कहा, तुमने यह क्या कर डाला?

लाड़ली बड़े गर्व से बोल उठा, क्यों, क्या मैंने कुछ बुरा किया?

लीलावती ने कहा, रेल के स्टेशन का गार्ड, व्हाइट वे की दूकान का असिस्टन्ट, हार्टब्रादर का साईस साहब, अगर ये लोग तुम पर रूठ जांय? अगर ये लोग तुम्हारे न्योते में शैम्पेन (शराब) पीने न आवें? अगर मुलाक़ात होने पर वे तुम्हारी पीठ न ठोकें?

लाड़ली ने गरम होकर कहा, तब तो मैं घर आकर बेहोश हो जाऊंगा!

कई दिन बाद, सबेरे के समय, चाय पीते पीते, लाड़ली की दृष्टि समाचारपत्र के एक अंश पर पड़ी। किसी 'क्ष' नामधारी पत्रप्रेरक ने कांग्रेस की सहायता के लिए एक हज़ार रुपया दान कर देने पर श्रीयुत लाड़लीप्रसाद की बड़ी तारीफ़ की थी। उसने लिखा था कि उनके ऐसे सज्जन को अपने दल में पाकर कांग्रेस का बल कितना बढ़ गया है, इसका ठीक ठीक वर्णन वह नहीं कर सकता।

कांग्रेस का बल बढ़ गया है! हा स्वर्गगत पिता पूरनमलजी! कांग्रेस का बल बढ़ाने के लिए ही तुमने अभागे को भारत भूमि में जन्म दान दिया था!

परन्तु दुःख के साथ ही साथ सुख भी रहता है। लाड़लीप्रसाद कुछ ऐसे वैसे मनुष्य नहीं हैं। उनको अपनी ओर खींच लेने के लिए एक तरफ़ भारतवर्ष के अंगरेज़ और दूसरी तरफ़ कांग्रेसवाले बड़े आग्रह से वंशी डालकर, टक-टकी बांधकर, बैठे बैठे ताक रहे हैं। यह बात कुछ थोड़ी नहीं है। इसलिए लाड़लीप्रसाद ने हँसते हँसते समाचार पत्र को उठा कर लीला-वती को दिखाया। किसने उस लेख को लिखा है, मानो वह जानती ही नहीं, ऐसा भाव दिखा कर लीलावती ने अपना चेहरा फीका कर लिया और घबराकर बोल उठी, अरे, बनी बनाई बात सब बिगड़ गई। हाय, हाय! तुम्हारे साथ ऐसी दुश्मनी किसने की? उसके क़लम में घुन लग जाय, उसकी दावात में बालू भर जाय, उसके काग़ज़ को दीमक चाट जांय!

लाड़ली ने हँस कर कहा, और मत कोसो! मैं अपने दुश्मन को क्षमा करके आशीर्वाद देता हूं, उसकी क़लम दावात सोने की हो जायँ।

दो दिन बाद कांग्रेस के विपक्षी किसी अंग्रेज़ द्वारा सम्पादित एक अख़बार डांक से लाड़ली के पास आ पहुंचा। उसमें "रहस्य-ज्ञाता" नाम से दस्तख़त करनेवाले किसी आदमी ने उस पहले पत्र का प्रतिवाद छपवाया था। लेखक ने लिखा था कि जो लोग लाड़लीप्रसाद को

पहचानते हैं, वे कभी इस तरह उनकी झूठ मूठ बदनामी पर विश्वास नहीं करते। चीता के लिए अपने चमड़े पर के काले काले धब्बों को मिटा देना जैसा असम्भव है, लाड़लीप्रसाद के लिए कांग्रेस की पार्टी में मिल जाना भी ठीक वैसा ही असम्भव है। श्रीयुत लाड़लीप्रसाद में बहुत बड़ी सार वस्तु है, वे बेकाम उम्मेदवार या मुवक्किल-रहित वकील नहीं हैं। वे दो दिन के लिए विलायत की हवा खाकर पोशाक, खाना पीना और रहन सहन के क़ायदों में बन्दरों की चाल सीख कर, यहां के अंगरेज़ों के साथ मिलने में निराश नहीं हो चुके हैं। इसलिए उनका सा मनुष्य क्यों ऐसा काम करेगा? इत्यादि इत्यादि।

हाय परलोकवासी पिता पूरनमलजी! अंगरेज़ों के पास इतना नाम, इतना विश्वास, पैदा करके तब तुम मरे थे!

यह पत्र भी सालीजोके पास—मोर जैसे अपना पङ्ख फैला देता है उसी तरह—दिखला देने योग्य था। क्योंकि इसमें एक बड़ी भारी बात थी। लाड़ली कोई ऐसा वैसा मनुष्य नहीं है। वह सार वस्तु से भरा हुआ है! साली ने पत्र देखा।

लीलावती फिर आकाश पर से गिर पड़ी। उसने बड़े आश्चर्य से कहा—यह अब तुम्हारे किस मित्र ने छपवाया है? किस टिकटकलेकृर ने, किस चमड़े के दलाल ने, किस बाजेवाले सार्जण्ट ने इसे लिखा है?

रतनचन्द ने कहा, तुमको इस पत्र का एक प्रतिवाद तो ज़रूर करना चाहिए।

लाड़लीप्रसाद ने कुछ ऊंचे स्वर से कहा, क्या ज़रूरत है? लोग जब जो कुछ कहें, क्या सभी का प्रतिवाद करना होगा?

लीलावती ने बड़े ज़ोर से चारों ओर हँसी का फौवारा छोड़ दिया।

लाड़ली ने शरमा कर कहा, इतनी हँसी किस बात पर?

इसके उत्तर में लीलावती ने दूसरी बार इतना अट्टहास आरम्भ किया कि उसकी यौवन से फूली हुई देहलता लोटने लग गई।

लाड़ली आँख, मुंह, नाक में परिहास की पिचकारियां खाकर बहुत ही लज्जित हुआ। कुछ मन मसोस कर वह बोला, आप समझती हैं कि मैं प्रतिवाद करने से डरता हूं!

लीलावती बोली, सो क्यों? मैं सोच रही थी कि तुमने अब तक अपने प्यारे घुड़दौड़वाले मैदान की आस नहीं छोड़ी है। ठीक है, जब तक साँस, तब तक आस भी नहीं छूटती!

लाड़ली ने कहा, वाह, मैं क्या उसीलिए नहीं लिखता। वह बहुत क्रोध करके दावात क़लम लेकर बैठ गया। परन्तु लेख में क्रोध की लाल छटा न देख पड़ी। इसलिए रतनचन्द और लीलावती को उसके संशोधन का भार लेना पड़ा। मानो पूड़ियां सेंकी जाने लगीं। लाड़ली पानी से गूंध गूंध, घी लगा लगा कर, ठण्ढी ठण्ढी बेल बेल कर, जहां तक उससे बन पड़ा, चिपटी बनाने लगा; और उसके दोनों सहकारी तुरन्त उनको सेंक कर कड़ी और गरम करके फुला देने लगे। लिखा गया कि घरवाला जब शत्रु होता है तब बाहरी शत्रु से भी वह अधिक भयङ्कर बन जाता है। पठान या रूस भारत गवर्नमेंट के वैसे भारी शत्रु नहीं हैं, जैसे गर्व से फूले हुए हिन्दुस्तानी अंगरेज़ हैं। यही लोग गवर्नमेंट और प्रजा, दोनों के बीच में, खड़े होकर उनमें मेल नहीं होने देते। कांग्रेस ने प्रजा और राजा में मेल कराने की जो चौड़ी सड़क खोली है, हिन्दुस्तानी अँगरेज़ों के समाचारपत्र उसीको रोककर खड़े हो जाते हैं; उसीमें वे काँटे बो रहे हैं। इत्यादि।

लाड़ली मनही मन डरने लगा। और लेख बहुत उत्तम लिखा गया है, यह जान कर मनही मन उसके लिए वह गर्वित भी होने लगा।

इसके बाद समाचारपत्रों में लाड़ली के कांग्रेस में रुपया दे देने पर बहुत वाद-प्रतिवाद होने लगे;

और उसके कांग्रेस में मिल जाने की ख़बर ढोल पीट पीट कर सबको सुनाई जाने लगी।

लाड़ली बेचारा क्या करे, अपनी साली के पास वह देशहितैषिता की डींगें हांकने लगा। लीलावती मनही मन हँस हँस के कहा करती, अभी तुम्हारी अग्निपरीक्षा बाक़ी है।

एक दिन सबेरे, स्नान करते समय, लाड़ली अपनी पीठ आदि शरीर के दुर्गम स्थानों को साबुन से मलने की फ़िक्र में लगे हैं, ऐसे समय में बेहरा ने उनके हाथ में एक कार्ड ला दिया। कार्ड पर स्वयं मेजिस्ट्रेट साहब का नाम लिखा हुआ था। लीलावती हास्य से खिले हुए नेत्रों से, आड़ में होकर, तमाशा देख रही थी।

साबुन के फेनों से भीगी हुई देह से तो मैजिस्ट्रेट साहब से कोई नहीं मिल सकता—बेचारा लाड़ली बड़ी भारी खलभली में पड़ गया। झटपट दो लोटे पानी डाल कर, बदन को पोंछ, ज्यों त्यों कपड़े पहन, हांफता हुआ बाहर दौड़ा गया। मगर साहब नदारद। बेहरे ने कहा, साहब बड़ो देर तक बैठे बैठे ऊब कर चले गये। इस साद्यन्त झूठ का कितना भाग बेहरे का था, और कितना लीलावती का, यह नैतिक गणितशास्त्र की एक सूक्ष्म समस्या है।

छिपकली की कटी हुई पूंछ घण्टों छटपटाया करती है। लाड़ली का छोटा सा हृदय भी भीतर ही भीतर उसी तरह पछाड़ें खाने लगा। दिन भर खाते पीते, सोते बैठते, उसको चैन न पड़ी।

लीलावती भीतरी हँसी के सब चिन्हों को मुख पर से बिलकुल मिटाकर, बड़ी उदास सी होकर, बीच बीच में पूछती रही, आज तुमको क्या हुआ है? तबीयत तो अच्छी है न?

लाड़ली बड़ी कठिनाई से हँसकर योंही कुछ उत्तर दे देता,—कहता,—आपके पास रहने से भला कहीं तबीयत ख़राब हो सकती है? आप मेरी धन्वन्तरिणी हैं!

परन्तु वह हँसी पल भरही में बिला जाती।

लाड़ली फिर सोचता,—एक तो मैंने कांग्रेस में चन्दा दे डाला; अख़बार में कड़ी चिट्ठी छपवाई,—तिस पर ख़ुद साहब मैजिस्ट्रेट मुझसे मिलने आये; मैंने उनको बैठा रक्खा—न जाने वे क्या समझते होंगे!

हा पिता पूरनमलजी! मैं जो नहीं हूं, भाग्य के फेर से, गड़बड़ी में, मैं वही समझा जाने लगा!

दूसरे दिन अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर, घड़ी की चेन लटका कर, सिर पर बढ़िया अम्मामा बाँधकर, लाड़ली घर से निकला। लीलावती ने पूछा, कहां चले? उसने उत्तर दिया, एक ज़रूरी काम से जा रहा हूं। लीलावती चुप रही।

साहब के दरवाज़े पर कार्ड निकालते ही अर्दली ने कहा, अभी मुलाक़ात न होगी।

लाड़ली जेब से दो रुपये निकालकर देने लगा। अर्दली ने कहा, हम लोग पाँच आदमी हैं। लाड़ली ने झट १० रुपये का नोट निकाल दिया। साहब के पास से बुलावा आया। साहब तब स्लीपर (चप्पल) जूता और मार्निंग गौन (सुबह के कपड़े) पहन कर लिखने पढ़ने में लगे हुए थे। लाड़ली ने झुककर सलाम किया। मैजिस्ट्रेट ने उनको उंगली से बैठने की आज्ञा देकर, काग़ज़ से सिर बे उठाये ही कहा, क्या चाहते हो बाबू?

लाड़ली घड़ी की चेन हिलाते हिलाते, विनीत और काँपती हुई आवाज़ से बोला, आप मेहरबानी करके मुझसे मिलने गये थे, मगर—

साहब ने भौं चढ़ाकर काग़ज़ पर से आँखें उठाकर कहा, मैं तुमसे मिलने गया था! Babu, what nonsense are you talking? तुम पागल की तरह क्या कह रहे हो?

लाड़ली "Beg your pardon," (ग़लती माफ़ हो)—इत्यादि कहकर, पसीने से तराबोर होकर, कांपते कांपते, किसी तरह, बाहर निकल आया। रात भर, कहीं दूर स्वप्न में सुने हुए मन्त्र की तरह एक बात रह रह कर उसके कानों में गूंजने लगी—Babu, you area howling idiot!

घर लैाटती बेर उसने समझा कि साहब मुझसे मिलने गये थे, यह बात उन्होंने सिर्फ़ ख़फ़ा होकर नकार दी। वह मनही मन कहने लगा, धरती माता, तू फट जा, मैं तुझमें समा जाऊं। परन्तु धरती माता ने जब उसकी बात न मानी तब वह झटपट घर को लैाट आया।

लीलावती से आकर उसने कहा, घर भेजने के लिए मैं मुश्क लेने गया था।

इतनेही में कलकृरी के छः प्यादे चपरास बाँधे हुए आ पहुंचे। वे लोग सलाम करके मुसकराते हुए चुपचाप खड़े रहे।

लीलावती ने हँसकर कहा, तुमने कांग्रेस में चन्दा दिया है, इसीसे कहीं ये लोग तुम्हें गिरफ़्तार करने न आये हों।

छहों प्यादों ने दाँतों की बारह पंक्तियां निकाल कर कहा, बकसीस, बाबू साहिब!

रतनचन्द पासही के कमरे में बैठे थे। उन्होंने झिड़ककर पूछा बकसीस किस बात की?

प्यादों ने दाँतों को ग्रैार भी विकसित करके कहा, हुज़ूर मैजिस्ट्रेट साहब से मिलने गये थे, उसीको बकसीस!

लीलावती ने हँस कर कहा, क्या मैजिस्ट्रेट साहब ने आजकल मुश्क की दूकान खोली है? ऐसी ख़ुशबूदार सैादागरी तो वे पहले नहीं करते थे।

बेचारा लाड़लीप्रसाद मुश्क ग्रैार मैजिस्ट्रेट, दोनों की गांठ एक में जोड़ने की चेष्टा करने में ऐसा अनाप शनाप बकने लगा कि किसीने उसकी बात न समझी।

रतनचन्द ने कहा, बकसीस की कोई ज़रूरत नहीं है। बकसीस नहीं मिलेगा।

लाड़ली ने सकुचाते सकुचाते जेब में से एक नोट निकालकर कहा, ये लोग ग़रीब आदमी हैं; देने में हर्जही क्या है?

रतनचन्द ने लाड़ली के हाथ से नोट छीनकर कहा, इनसे भी अधिक ग़रीब आदमी इस दुनिया में हैं, मैं इसे उन्होंको बाँट दूंगा।

कुपित कालभैरव के भूत प्रेतों को कुछ ठण्ढा करने का अवसर न मिलने से लाड़ली बड़ी आपदा में फँसा। चपरासी लोग जब वज्र की सी कड़ी दृष्टि डालते हुए चलने लगे, तब लाड़ली बड़े ही करुणभाव से उनकी ग्रोर देखने लगा। मनही मन वह मिन्नत करने लगा—बाबा, इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है, सो तो तुम लोग जानतेही हो।

कलकत्ते में कांग्रेस हुई। इसलिए रतनचन्द सस्त्रीक राजधानी में जा पहुँचे। लाड़ली के भी उनके साथ जाना पड़ा।

कलकत्ते में पाँव धरतेही कांग्रेसवालों ने चारों ग्रोर से लाडली को घेर कर एक महान ताण्डव आरम्भ कर दिया। सम्मान, समादर, स्तुतिवाद की सीमा न रही। सब लोग कहने लगे, आपके ऐसे नायक यदि देशहित कार्य में न लगें तो फिर देश के लिए कोई भरोसाही नहीं। इस बात की सत्यता को लाड़ली ने अस्वीकार करना न चाहा— ग्रैार इसी तरह के गड़बड़ में वह अकस्मात् देश का एक भारी नायक बन गया। कांग्रेस की सभा में जब उसने पदार्पण किया, तब सब लोग मिल कर, खड़े होकर, विदेशी विलायती बोली में चिल्ला कर बोल उठे, "हिप् हिप् हुर्रे!" हमारी मातृ-भूमि के कान लाज से लाल हो गये।

यथासमय महारानी का जन्मदिन आ पहुँचा— लाड़ली का रायबहादुरी ख़िताब, पास पहुँची हुई छाया की तरह, अन्तर्धान हो गया।

उस दिन साँझ के लीलावती ने लाड़ली का न्योता किया, ग्रैार उसे नये कपड़े पहनाकर अपने हाथ से उसके माथे पर लाल चन्दन का टीका लगा दिया। लीलावती की दूसरी बहिनों ने अपने हाथों से गूंथी हुई एक एक माला उसके गले में डाली। सबने कहा, आज हमने तुमको राजा बनाया है। भारतवर्ष में ऐसा सम्मान तुमको छोड़ किसी दूसरे के मिलना सम्भव नहीं।

लाड़ली के इससे पूरी तसल्ली मिली या न मिली, यह तो उसका मनही जानता होगा, ग्रैार

जानते होंगे सब घट घट के अन्तर्यामी भगवान्। परन्तु हमको पूर्ण विश्वास है कि मरने के पहले वह ज़रूर रायबहादुर हो जायगा—और उसके मरने पर "पायोनियर" और "इङ्गलिश-मैन," दोनों, एकही स्वर से उसके लिए शोक करना न भूलेंगे। अच्छा, तब तक, थ्री चीयर्स फ़ार बाबू लाड़लीप्रसाद! हिप् हिप् हुर्रे! हिप् हिप् हुर्रे! हिप् हिप् हुर्रे!*

पार्वतीनन्दन।

सम्मिलित हिन्दू-कुटुम्ब-प्रथा के दूषण।

भारतवर्ष में सम्मिलित-कुटुम्ब-प्रथा ऐसी प्रचलित हो रही है जिस का वार पार नहीं। हिन्दुओं का कहना ही क्या है? उनमें तो यह प्रथा पूर्ण रूप से विराजमान हो है; पर उनकी देखादेखी मुसलमानों में भी वह थोड़ी बहुत चल पड़ी है। ग्रामीण मुसलमानों में इसका प्रचार प्रायः वैसाही है जैसा हिन्दुओं में है। हम यह नहीं कहते कि इसमें गुण हैं ही नहीं, अथवा यदि हैं तो इतने कम हैं कि उनपर ध्यान देना व्यर्थ है। ऐसा कदापि नहीं। उसमें अनेक अत्यन्त लाभदायक गुण अवश्य हैं; पर हमको दुःख-पूर्वक कहना पड़ता है कि उसमें गुणों की अपेक्षा हानियां बहुत विशेष और भयंकर हैं। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि जिस कुटुम्ब के सभी लोग समझदार हों और इस सम्मिलित परिपाटी के दोषों पर भली भाँति ध्यान रख कर उनसे बचते रहें, उस कुटुम्ब को इस प्रथा से बहुत कम हानियां एवं बहुत विशेष लाभ प्राप्त होंगे। पर ऐसे कुटुम्ब बहुत थोड़े मिलेंगे। अधिकता ऐसेही कुटुम्बों की देखने में आती है जिनके मेम्बरों में या तो खुल्लम खुल्ला लड़ाई अथवा उदासीनता है, या ऊपरी चमक दमक को आड़ में एक दूसरे मेम्बर के बीच वैमनस्य है। अस्तु, इस प्रथा के गुणों की विवेचना करने का आज हमारा विचार नहीं है। समय पाकर फिर कभी हम इस विषय को अपने पाठकों के सन्मुख छेड़ेंगे। सम्प्रति हम इस सम्मिलित प्रथा के दोषों की विवेचना करना चाहते हैं, क्योंकि किसी बात के दूषण जान लेने से हम उनसे बचने के उपाय आपही आप सोचने लगते हैं। अथवा यदि ऐसा ध्यान में आता है कि उन दोषों से बचना असम्भव है, तो हम उस बात से ही दूर भागने का प्रयत्न करते हैं।

(१) सम्मिलित कुटुम्ब में सबसे प्रधान दूषण यह है कि उसमें स्त्रियों और बच्चों की दशा सन्तोषदायक नहीं रहती। प्रायः देखा गया है कि साधारण समझदार लोग भी इस ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। बहुतेरे तो यही कह देते हैं कि "स्त्रियाँ तो कुत्तियाँ हैं, इन्हें भूकने दो। पुरुषों में मनोमालिन्य न होना चाहिए और उन्हें इन की बातों में न लगना चाहिए। बस, इसीमें कल्याण है।" हम यह नहीं कहते कि सम्मिलित घरानों के मेम्बरों को अपनी अपनी स्त्रियों ही के कहने पर चलना चाहिए; पर इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें कुत्तियां, बिल्लियाँ, बनाना बड़ी लज्जा की बात है। यदि स्त्रियाँ कुत्तियाँ हैं तो मर्द क्या होंगे? पर स्त्रियों और बच्चों को इस असन्तोष-जनक दशा के होने का कारण क्या है?

बच्चों के विषय में हमारी समझ में यही कहा जा सकता है कि उच्च घरानों में लोग अपने लड़कों से बड़ों के दबाव के कारण नहीं बोलते और उन की देखादेखी बड़े भी अपने लड़कों से लज्जा करने लगते हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि बड़े भी कभी छोटे थे, और अपने बड़े जेठे के दबाव के कारण अपने लड़कों से न बोलने के आदी थे। इससे जब वे घर के मुखिया भी हो जाते हैं, तब भी उन्हें, छोटों के सामने, अपने बच्चों से बोलने का, साहस नहीं होता। इस कारण पितृस्नेह कुछ न कुछ अवश्य मन्द पड़

---

* बाबू रवीन्द्रनाथ की कहानी का भावानुवाद।

जाता है। फिर किसी मेम्बर को, जब तक कि वह व्यवसाय अथवा सेवावृत्ति के कारण किसी दूसरी जगह अपने लड़के बालों सहित न रहता हो, यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी स्त्री या सन्तति को प्रकट रूप से कोई वस्तु ला दे। क्योंकि यह मान लिया जाता है कि दूसरे मेम्बर अथवा कुटुम्ब का अगुवा उसकी, एवं सभी मेम्बरों को, स्त्री और बच्चों के भरण पोषण का प्रबन्ध करता है, और करैगा। वास्तव में ऐसाही होता भी है। पर मनुष्य बहुत बड़ा सभ्य और विद्वान् होने पर भी अन्त को एक प्रकार का जानवरही तो है। अतः उसके चित्त से पाशवीय आदतें बिलकुल कैसे लोप हो सकती हैं? और ज्ञान का पूर्ण राज्य उसके दुर्बल चित्त में कैसे संस्थापित हो सकता है? मनुष्य चाहै जितना बनै, चाहै जितनी ज़ाहिरदारी दिखावै, और अपने चित्त को चाहै जितना रोकै और समझावै, पर उसके लिए यह असम्भव है कि वह सचमुचही किसी दूसरे की स्त्री और बच्चों से उतनाही स्नेह करै जितना अपनों से। भाइयों में तो कभी कभी देखा गया है कि वे एक दूसरे का अपने अपने लड़कों से यदि अधिक नहीं तो बराबर स्नेह अवश्य करते हैं। पर और किसीको (माता पिता को छोड़ कर) कदाचित् ही कोई मनुष्य अपने लड़कों के बराबर मान सकता हो!

यदि किसी मनुष्य के दो लड़के हों, एक ३० वर्ष का, दूसरा ५ वर्ष का, और उसके बड़े लड़के के भी ५ वर्ष का एक लड़का हो, तो वह मनुष्य अपने छोटे लड़के का, अपने नाती (अथवा पोते) की अपेक्षा, कदाचित् विशेष ही प्यार करैगा, यद्यपि दिखलाने को चाहे वह यही प्रकट करै कि उसे नाती अधिक प्रिय है। इसमें उस मनुष्य का कुछ भी दोष नहीं। यह तो ईश्वरीय नियम है। इसमें किसीका कुछ भी वश नहीं। कोई मनुष्य सम्बन्ध में आपके जितना ही निकट होगा, उतना ही वह आपको अधिक सगा और आत्मीय प्रतीत होगा। पर कोई आपका चाहे जितना निकट सम्बन्धी हो, वह आपकी आत्मा की अपेक्षा अवश्य हो कुछ दूर होगा। अर्थात् आप उसको बिलकुल अपने बराबर नहीं मान सकते। भाई, बेटे और स्त्री को कभी कभी लोग इतना प्रिय मानते सुने गये हैं, कि उनके बिछोह में उन्होंने प्राण तक त्याग दिये हैं; पर ऐसे उदाहरण देखने में बहुत कम आये होंगे, और यदि कोई देखे भी गये होंगे तो यही कहना पड़ैगा कि वे अपने ऐसे भाई, बेटे अथवा स्त्री को इस कारण इतना प्रिय मानते थे कि वे उनके भाई, बेटे या स्त्री थे। अर्थात् वहाँ पर भी आत्मा से सम्बन्ध लगा है। अतः यह स्पष्ट है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे के बालबच्चों का उतना प्यार कदापि नहीं कर सकता जितना अपनों का। और यही कारण है कि अपने बच्चे के सिर में साधारण दर्द होने से मनुष्य को जो चिन्ता हो जाती है, उसकी दशमांश चिन्ता दूसरों के लड़कों का कष्ट देख कर नहीं उत्पन्न होती। अपने लड़के की थोड़ी सी भी बीमारी का ध्यान उसे सदाही लगा रहता है। पर दूसरे के लड़कों को अधिक बीमार जान कर भी वह बात उसके चित्त से आप ही आप उतर जाती है; उसका स्मरणही नहीं रहता।

दुर्भाग्यवश मनुष्य में आत्मस्नेह की मात्रा आवश्यकता से बहुत विशेष है। इसका कारण संसारपरिचालन का प्राकृतिक नियम है। ईश्वर के संसार रूपी रथ के दोनों पहिये, आत्मरक्षण और वंशोत्पादन नामक दो प्रबल वासनायें, हैं। इन्हीं दोनों वासनाओं के सहारे वह बाजीगर इस संसार को दारुयोषित् कीभाँति नचाता है। सारे जलचरों, थलचरों और नभचरों के सभी कामों में ये दोनों वासनायें सबसे अधिक बलवती होती हैं। इनका प्रभाव प्रत्यक्ष देख पड़ता है। आत्मरक्षावाली वासना के बिना समस्त संसार चुटकी बजाते नष्ट हो जाय। और वंशोत्पादन-

वाली वासना यदि जीवधारियों में न रहै ते यह जगत दूसरी पीढ़ी का मुँह न देख सकै। हमारा उत्कट ग्रात्मस्नेह इन्हीं दोनों प्रबल वासनाओं का औरस पुत्र है। हम अपने भाई का स्नेह करते हैं, क्योंकि वह हमारे ही माता-पिता का पुत्र है। और हम अपने पुत्र का स्नेह इस कारण करते हैं कि वह स्वयं हमाराही पुत्र है। अतः साधारण रीति पर भ्रातृस्नेह और पुत्रस्नेह में इतना अन्तर स्वभाव ही से होना चाहिए जितना कि पितृस्नेह और आत्मस्नेह में है। भतीजों का स्नेह ते इस कारण होता है कि वे पिता के पुत्र के पुत्र हैं। तब पुत्रस्नेह और भ्रातृस्नेह में स्वभावतः कितना बड़ा अन्तर होना चाहिए, यह प्रकटही है। परन्तु सम्मिलित कुटुम्ब में भावगोपन की रीति ऐसी स्थिर है कि मनुष्य को विवश होकर प्रायः यह प्रकट करना पड़ता है कि वह अपने लड़कों और भतीजों को बराबर मानता और चाहता है! हम मानते हैं कि एक साथ रहने के कारण अच्छे लोग अपने भतीजों का कभी कभी इस दरजे तक प्यार करने लगते हैं जो पुत्रस्नेह से मिलता जुलता होता है; और सभी अच्छे आदमी उनका सच्चा प्यार करते हैं। पर हमारी समझ में यह बात प्रायः असम्भव है कि कोई उन्हें स्वयं अपने लड़कों ही के बराबर मानै। अतः कदाचित्‌ही कोई ऐसा मनुष्य हो जो उनका उसी स्नेह से लालन पालन कर सकै जैसा वह अपने लड़कों का।

बालकों के भरण पोषण में केवल सांसारिक पदार्थों ही की आवश्यकता नहीं होती। सच है--

"जेहि चितवत वश होत मन सो चितवनि कछु और"

तथा—

"रहिमन रहिला की भली जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करै सो मैदा जरि जाय॥"

अतः बालकों के लिए सांसारिक वस्तुओं के साथ ही साथ पितृस्नेह की भी बड़ी भारी आवश्यकता रहती है। बालक यही नहीं चाहता कि जाड़े में वह गरम वस्त्र ही ओढ़ै; परन्तु वह यह भी चाहता है कि उसे कोई हृदय से भी लगाये हो। सम्मिलित कुटुम्ब में यह दूसरे प्रकार का स्नेहमय पोषण पिता की ओर से बालकों को बहुत कम नसीब होता है। वह पैत्रिक कोमलता और सहृदयता, जो बालक को एक निकम्मे पिता से भी मिलती है, साधारण तौर पर अच्छे से भी अच्छे चचा से नहीं प्राप्त हो सकती। बालकों के लिए केवल माताही का स्नेह बस नहीं है; क्योंकि उसका प्रभुत्व केवल ज़नाने के चार कोनों ही के भीतर होता है। उसके बाहर बालकों को हृदय के अभ्यन्तर से चुचकारनेवाला कोई नहीं होता। राजा ययाति ने अपनी जेठी स्त्री देवयानी के भय से केवल एक बार अपनी कनिष्ठ स्त्री शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु का आदर न किया, जिससे उस बालक का हृदय विदीर्ण हो गया। तब अपने पिता की अपनी ओर प्रतिदिन उपेक्षा होते देख क्या बालकों के चित्त में कुछ भी दुःख न होता होगा? हमने देखा है कि सम्मिलित कुटुम्ब के मेम्बर जिस समय अपने भतीजे-भतीजियों का लाड़ प्यार करने लगते हैं, उस समय स्वयं उन्हींके पुत्र उनको अपने से न बोलते देख मन मार कुछ दुःखित से ज़रूर हो जाते हैं। जिस मानसिक दौर्बल्य के कारण बालक एक बार भी सम्मानित न होने पर रो देता है, उसी कारण बड़े और समझदार होने पर भी उसको यह जान कर भी मनस्तुष्टि नहीं होती कि उसका पिता केवल लोकलाज से उसका सन्मान नहीं करता, यद्यपि वास्तव में उसका हृदय वात्सल्य-पूर्ण है। इस मनःतुष्टि के अभाव में हमारा पूर्ण विश्वास है। हमने सम्पन्न कुटुम्बों के तीन यौवन-प्राप्त लड़कों से पूँछा तो उन्होंने भी हमारे इस विचार का पूर्ण रीति से समर्थन किया। उन तीनों महाशयों में से केवल एक की उम्र १७-१८ साल की थी; और शेष दो २५ से ३० वर्ष के बीच में होंगे। ये दोनोंही पूर्णतया शिक्षित हैं।

कुछ लोगों का ख़याल है कि सम्मिलित कुटुम्ब-वाले पिताओं को अपने पुत्रों के भरण पोषण, विद्या, विवाहादि में कुछ भी परिश्रम नहीं उठाना पड़ता, और अलग हो जाने पर पढ़े लिखे तैयार पुत्र उन्हें बिना कष्ट मिल जाते हैं। यह ख़याल किसी अंश में भी सच नहीं है। भाई भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्बों के उन थोड़े से मेम्बरों का, जिनके पुत्र भी मौजूद हैं, यह दृढ़ मत है कि पुत्रों के पालनपोषणादि में जो कष्ट पड़ता है वह वास्तव में आनन्दाश्रु के समान है। और जिसने कभी उन अश्रुओं के सुख को नहीं भोगा, उसको उस सुख का अनुभव ही नहीं हो सकता। यह तो मानसिक सुख की बात हुई। अब यदि आप सांसारिक सुख पर ध्यान दीजिए तो १०० में ९० कुटुम्बों में आप बालक और स्त्रियां सुखी न पावेंगे। इसका मुख्य कारण वही आत्मस्नेह है। हमने सुना है कि लाला लाजपतरायजी ने दृढ़ नियम कर लिया है कि अपनी वकालत की समस्त आय वे दयानन्द कालेज को दे दिया करेंगे, और स्वयं अपना भरण-पोषण तक अपनी अन्य सम्पत्ति द्वारा करेंगे। सुनते हैं कि वे यह देवतुल्य कार्य बहुत दिनों से कर भी रहे हैं और जन्म भर उसे पूरा करने का उन्होंने निश्चय कर लिया है। हम यह भी जानते हैं कि उनका आदर-सत्कार भी देश भर में आज वैसाही है। उस धन को अपने लिए ख़र्च करने अथवा जोड़ रखने से उक्त लाला साहब का प्रायः कुछ भी नाम न होता; पर उसी धन को कालेज में लगा देने से आज वे समस्त देश में पूज्य बुद्धि से देखे जाते हैं। अपने पूज्य पिताजी के अनुग्रह से यदि आज से हम भी लाला लाजपतरायजी की भाँति अपनी निज की आमदनी देशहितार्थ समर्पित कर दें, तो भी खाने को कोई तकलीफ़ न हो; परन्तु दुर्भाग्यवश स्वार्थ की वासना इतनी बलवती है कि हमसे ऐसा नहीं करते बनता। इसी स्वार्थ-प्राबल्य और हृदय की संकीर्णता के कारण सम्मिलित कुटुम्बों के मेम्बर दूसरे मेम्बरों के लड़कों को प्रायः ऐसे पदार्थ नहीं दे सकते जो वे अपने लड़कों को देते। परिणाम यह होता है कि अनेक सम्मिलित घरानों के कार्यपरिचालक प्रायः अपने लड़कों को छिपछिपाकर जो जो पदार्थ दे देते हैं, उन्हीं के लिए दूसरे मेम्बरों के लड़के तरसा करते हैं। यही दशा स्त्रियों की होती है। कहीं कहीं यह भी देखा गया है कि कार्यपरिचालक मेम्बर उदारचेता कहलाने के लालच से दूसरे मेम्बरों की स्त्री और बच्चों की तो ख़बरदारी रखते हैं; पर स्वयं अपनी स्त्री और बच्चों के साथ कृपणता का व्यवहार करते हैं। इससे उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। पर ऐसे उदाहरण बहुत कम देख पड़ते हैं।

पैत्रिक कुटुम्ब में पिता का कोई और मन्त्री तो होता नहीं, अतः वह सभी सलाहों में पुत्रों को सम्मिलित करता है। इससे उसके पुत्रों को घर के काम काज और व्यापार-व्यवहारादिक में अधिक पैठ हो जाती है। घर में उनका अधिकार बढ़ जाता है, जिससे उनमें स्वतन्त्रता का बीजारोपण ठीक समय पर हो जाता है, और वे दब्बू चप्पू नहीं होते। हम अपनी बाल्यावस्था में एक पैत्रिक घराने के मेम्बर थे; और, अपने पूज्य पिता के स्वर्गवासी होने पर, अब ६ वर्ष से, भाई-भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्ब के मेम्बर हैं। हमने देखा है कि थोड़ी उम्र में भी हमारी बात घर की सलाह में जितनी चल जाती थी, उतनी भाई भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्ब के मेम्बरों* के, हमसे बड़े और अधिक विद्वान्, पुत्रों तक की नहीं चलती। कारण यह है कि ऐसे कुटुम्ब में मेम्बरों ही की सलाह होती है; उनके पुत्र सलाह में सम्मिलित किये ही नहीं जाते। "प्राप्ते तु षोड़शे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्" वाली कहावत पैत्रिक घरानोंही में चलती है, भाई-भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्बों में नहीं। वास्तव में इस दूसरे प्रकार के सम्मिलित कुटुम्ब में पुत्रों

* ध्यान रहे कि मेम्बर हम उन्हें कहते हैं जो अदालत द्वारा अपना हिस्सा बटवा ले सकते हैं। लेखक।

का दूरजा प्रायः भतीजों का सा हो जाता है; क्योंकि कोई पिता अपने पुत्र से न तो अच्छी तरह बोल चाल सके, और न उसकी ख़बरदारी ही कर सके। तब वात्सल्यभाव कहाँ? ऐसे घरानों में कुटुम्बी बातों में पुत्र सम्मिलित नहीं होते। अतः आपस में और घराने के बाहर उनकी अलग बातें होती हैं। कुटुम्ब की बातों से उनका मन खिन्न और हतोत्साह हो जाता है। पैत्रिक कुटुम्ब में प्रत्येक लड़के का समान सत्कार होता है। परन्तु भाई भतीजोंवाले कुटुम्ब में ऐसा नहीं होता। यदि सब मेम्बरों का भाग बराबर हुआ, और एक के अधिक लड़के हुए, तो जो लड़के गिनती में कम होते हैं वे सोचने लगते हैं कि हमारे पिता का भाग अधिक लड़कोंवाले पिता के भाग के बराबर है। फिर क्या कारण है कि हमको भी उतने ही पदार्थ मिलें जितने अधिक गिनतीवाले लड़कों को? ऐसेही यदि किसीका पिता अधिक धन पैदा करता हो तो वह सोचता है कि मेरा अधिक सम्मान होना चाहिए। इस कारण मेम्बरों के लडकों में एक दूसरे से विरोध और ईर्षा रहती है और उनमें मेल नहीं बढ़ता। ऐसे कुटुम्ब बहुत कम होते हैं जिनमें मेम्बरों का भाग भी बराबर बराबर हो, उनके लड़के भी बराबर बराबर हों, और उनकी निज की आमदनी भी बराबर बराबर हो।

भाई-भतीजोंवाले सम्मिलित कुटुम्ब में सगे, सौतेले, चचेरे इत्यादि कई प्रकार के भाइयों के एक ही में रहने, और साधारण तौर पर उनमें स्नेहाभाव होने, से उनके चित्त में भाई शब्द उस स्नेह का बोधक नहीं रह जाता जिसका कि उसे होना चाहिए। धीरे धीरे सगे भाइयों में भी इतना प्रगाढ़ प्रेम नहीं रहता जितना कि पैत्रिक कुटुम्ब में होता है यहां तक कि कभी कभी ऐसे कुटुम्बों के लड़के बाहरी मित्रों से सगे भाइयों की अपेक्षा भी अधिक प्रीति रखते देखे गये हैं। स्वयं मेम्बरों में प्रायः प्रगाढ़ स्नेह रहता है; क्योंकि वे किसी समय पैत्रिक कुटुम्ब के मेम्बर रह चुके हैं। परन्तु जो कुटुम्ब पैत्रिक कुटुम्ब से न बनकर भाई-भतीजोंवालेही कुटुम्ब से बनता है—अर्थात् जो कुटुम्ब कभी ऐसा नहीं था जिसका एक मनुष्य अपनी सन्तान के सहित अकेलाही रहता रहा हो—उसमें प्रायः मेम्बरों में भी आपस में बेईमानी, दग़ाबाजी और काट छाँट की बातें पाई जाती हैं। उनके पुत्रों की तो कहनाही क्या है? ऐसे कुटुम्ब के मेम्बर स्वयंही किसी समय भाई-भतीजोंवाले कुटुम्ब के मेम्बर रह चुके हैं, अर्थात् उनमें बाल्यावस्थाही से ईर्ष्या और द्रोह वर्तमान थे। तब उनमें हार्दिक सहानुभूति कहाँ सम्भव है?

स्त्रियों का यह हाल है कि वे एक दूसरे से कुछ भी वास्ता न रखनेवाले अनेक कुलों से ला ला कर इकट्ठी कर दी जाती हैं। फिर उनमें प्राकृतिक स्नेह अथवा सहानुभूति कैसे हो सकती है? प्रत्येक मेम्बर की स्त्री भाई के कुटुम्ब में अपना प्रभुत्व जमाना चाहती है। और किसी दूसरी स्त्री से स्वाभाविक स्नेह न होने के कारण उसकी यदि सबसे मन मैली हो जाय तो आश्चर्यही क्या है? भारत के भाग्य में यह अभी कहां कि यहां की स्त्रियां सुशिक्षित हों! अतः उनमें नित नये झगड़े और बखेड़े उठते हैं। यदि मेम्बरों को सम्मिलित कुटुम्ब में रहना अभीष्ट है तो अवश्यही वे अपनी अपनी स्त्रियों पर क्रोध करेंगे। इस प्रकार दम्पति-प्रेम में अवश्य धक्का लगेगा। स्त्रियां तो समझतीं नहीं कि उनके पति के हृदय में वास्तव में वैसी कठोरता नहीं है जैसी कि उन्हें कभी कभी दिखलानी पड़ती है। बस, वे समझ बैठती हैं कि उनका प्राणनाथ उनसे समुचित प्रेम नहीं रखता। स्त्री का चित्त बड़ा दुर्बल होता है; और जब तक मनुष्य स्वाभाविक से कहीं बढ़कर प्रेम उस पर प्रकट नहीं करता, तब तक उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता। स्वयं महात्मा भर्तृहरि उचित कर्म्मों की संख्या गिनाते हुए कह गये हैं कि "नारीजने धूर्त्तता"। पर सम्मिलित कुटुम्ब में धूर्ततापूर्वक अधिक प्रेम दिखाने की जगह वास्तविक प्रेम भी

नहीं प्रकट होने पाता। तब स्त्रियां अपने अपने पतियों से कैसे प्रसन्न रह सकती हैं? कभी कभी डांटे जाने के कारण उनके उच्च पद में भी बट्टा लग जाता है। उनकी भूलें, उनकी बातों की उपेक्षा और उनका अनादर देख कर उनके लड़के तक सोचने लगते हैं कि वे मूर्ख हैं। जिसके आत्मज तक उसे मूर्ख समझें उसको प्रसन्नता कैसे हो सकती है? और वे आत्मज उसका क्या सन्मान कर सकते हैं? सारांश यह कि स्त्रियां समझती हैं कि उनका पति उनसे प्रेम नहीं रखता, घर में उनका बहुत कम अधिकार है, और उनके पुत्र तक उन्हें नहीं दबते। इससे वे हतोत्साह और दुःखित सी रहती हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जिस घर में स्त्रियां प्रसन्न नहीं रहतीं उस पर देवता और पितरों की कृपा नहीं होती। सो वास्तव में ऐसे घरों में, घर से बाहर तक, पूर्ण प्रसन्नता बहुत कम देखने में आती है। हतोत्साह स्त्रियां अपनी अपनी चीज़ें तो .खूब सञ्चित करके रखती हैं; पर, कुटुम्ब की बहुमूल्य चीज़ों की वे ज़रा भी परवा नहीं करतीं—चाहे वे आँगन में ही पड़ी पड़ी सड़ क्यों न जायँ। वहाँ "अशर्फ़ियों की लूट और कोयले पर छाप" वाली कहावत ठीक उतरती है। सारांश यह कि भाइयोंवाले कुटुम्बों में स्त्रियों की दशा बहुतही शोचनीय होती है। कदाचित् इसी दुरवस्था को देखकर गोस्वामी तुलसीदासजी ने स्त्रियों की इतनी भारी निन्दा की है कि कहते नहीं बनता—

"नारि सुभाउ साँचु कबि कहहीं।
औगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अबिवेक असौच अदाया॥
* * * * *
"सती कीन्ह चह तहँउ दुराऊ।
देखहु नारि सुभाउ प्रभाऊ॥
* * * * *
"बिधिहु न नारि हृदय गति जानी।
सकल दोष अघ अवगुनखानी॥"

हाय हाय! जो स्त्रियां लक्ष्मी का रूप, दया और सुशीलता की आकर, कोमलता की राशि और सद्गुणों का आगार होती हैं, उन्हींकी श्रीगोस्वामी जी जैसे कवि ने ऐसी अपवादपूर्ण निन्दा करना उचित समझा! कदाचित् यह इसी सम्मिलित कुटुम्बप्रणाली का फल है!!! अस्तु।

(२) इसी पुत्रों और स्त्रियों की कुदशा को देखकर प्रायः प्रत्येक मेम्बर समझने लगता है कि अमुक मेम्बर के कारण यह तकलीफ़ है और .खुद अपने को छोड़कर बाक़ी सब मेम्बर किसी न किसी प्रकार दोषभाजन अवश्य हैं। वह समझता है कि अमुक मेम्बर अपने पुत्रों का मेरे पुत्रों से अधिक स्नेह करता और उन्हें अधिक सुखी रखता है; अथवा मेरे पुत्र की अमुक आवश्यकता को वह पूरी नहीं करता; अथवा मेरी स्त्री दो महीने से बीमार है और उसको कोई उचित दवा नहीं करता; अथवा मेरा १५ दिन का छोटा लड़का इस कारण प्रसूतिघरही में मर गया कि और लोगों ने बुरी जगह प्रसूति का प्रबन्ध किया; अथवा दो साल का मेरा लड़का दवा पानी में अमुक मेम्बर की सुस्ती के कारण जाता रहा, इत्यादि, इत्यादि। ये, और ऐसीही ऐसी हज़ारों झूठी-सच्ची, निर्मूल, अथवा कुछ सच और कुछ अज्ञान और स्वार्थरूपी सूक्ष्मप्रदर्शक यन्त्र द्वारा अत्यन्त बढ़ी हुई, शिकायतें प्रत्येक मेम्बर के हृदय को दग्ध किया करती हैं। स्त्रियों की कानाफूसी और लज्जावश उनकी बातों की सत्यता का कोई अनुसन्धान न होना ऐसा है जिसके कारण भी मनुष्य को बड़े बड़े कष्ट सहना पड़ते हैं। इन सब बातों को प्रत्येक मेम्बर अपने हिसाब क्षमा करता चला जाता है, चाहे उसके "क्षमाभाजन" ने कोई क्षमावाला क्या, कुछ भी अनुचित काम, कियाही न हो। सम्भव है कि यदि ऐसी शिकायतों की जाँच हो तो उलटा "क्षमाभाजन" मेम्बर की ही उदारता और सहनशीलता की मात्रा अधिक निकले और उलटे क्षमा करनेवाले महाशय को ही अपनी स्त्री या लड़के

या खुद अपनी भूल पर क्षमा माँगना पड़े। परन्तु लोकलाज के कारण उस बात की जाँच करै कैान? बस, प्रत्येक मेम्बर औरों के ऐसेही ऐसे "अपराध" बराबर "क्षमा" करता चला जाता है और मेम्बरों में प्रकट में तो मेल रहता है, परन्तु चित्त एक दूसरे से खिँचताही चला जाता है। यहां तक कि ऊंट की पीठ तोड़नेवाले अंतिम तिनके का अवसर एक दिन आही जाता है। तब प्रत्येक मेम्बर अपने मन में कह बैठता है कि—

"अब लग सहे अमित अपराध।
अब नहिँ क्षमब नेकु पल आध।"

बस, किसी तुच्छ सी बात पर, तू तू मैं मैं की नैाबत आ जाती है। उसी दिन सम्मिलित कुटुम्ब तितर बितर हो जाता है; लड़ाई दंगे खड़े हो जाते हैं; "अदालत द्वारा" अथवा "गृह द्वारा" दंड देने की विधियाँ सोची जाने लगती हैं; मुक़द्दमेबाज़ी में रुपया पानी ऐसा उड़ने लगता है; भाई भाई में मुँह-बोलाव नहीं रह जाता; और कुछही काल में दोनों की सम्पत्ति स्वाहा हो जाती है। देखनेवाला सोचता है कि "इन भाई भाइयों में तो बड़ा साथ था। ऐसी सड़ी हुई बात पर क्यों इतना बिगाड़ हो गया? ईश्वर की माया विचित्र है!" वह यह नहीं जानता कि सारी चमक दमक ऊपरी थी, पेट में विलक्षण ज्वाला धधक रही थी। अब यदि सोचा जाय तो इसमें दोष एक मेम्बर का नहीं। सभीने प्रकृति के अनुसार काररवाई की। परन्तु इस सम्मिलित कुटुम्ब और सब मेम्बरों की थोड़ी बहुत मूर्खता की बदैालत उनमें घोर शत्रुता होगई।

(३) यदि किसी मेम्बर की निज की आमदनी दूसरे मेम्बरों से बहुत विशेष हुई, पर उसका भाग कुटुम्ब में थोड़ा हुआ, अथवा वह कुटुम्ब का स्वच्छन्द मेम्बरही न हुआ, तो वह बड़ी कठिनाई में पड़ जाता है। यदि वह एक में रहता है तो उसकी आमदनी का एक बहुत ही छोटा अंश उसके हिस्से में पड़ता, या पड़ सकता है; और यदि वह जुदा होता है तो उसके सिर व्यर्थ का अपवाद लगता है, अथवा इस दूसरी दशा में, वह अपनी पैत्रिक सम्पत्ति पा ही नहीं सकता। आगे चल कर चाहे जो कुछ हो। दुर्भाग्यवश समाज में सम्मिलित घरानों का जुदा हो जाना बड़ा दोष समझा जाता है; और जो लोग, जैसे बन पड़ता है, कठिनतायें सहते, दुःख झेलते, मन मारते, हानियाँ उठाते, किसी तरह सम्मिलित दशा में चले जाते हैं, उनकी प्रशंसा भी खूब होती है। पर हमारी समझ में यदि ऐसा मेम्बर कुटुम्ब से जुदा हो जाय तो दूसरे मेम्बरों को, बिना किसी समुचित कारण के, उस पर कुपित न होना चाहिए। क्योंकि यदि वह अपने जन्म पर्य्यन्त की कमाई को बाँट न दे तो वह, सिर्फ़ इसी कारण से, बुरा मनुष्य कदापि नहीं हो सकता। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि उसे भी इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि उसने सम्मिलित सम्पत्ति से जहाँ तक लाभ उठाया है, उसका पूरे से कुछ अधिक बदला चुका दे।

(४) सम्मिलित कुटुम्ब में एक यह भी दोष है कि यदि एक मेम्बर ५००) रुपये मासिक पैदा करता है, पर दूसरे में केवल १५) रुपये मासिक पैदा करने की योग्यता है, तो वह दूसरा मेम्बर कदाचित् कुछ भी काम न करैगा। वह बेकारही बैठा बैठा तोंद पर हाथ फेरता रहैगा। और यदि १५) रुपये मासिक की नैाकरी कहीं कर भी ली तो वह बीस पचीस रुपये मासिक ख़र्च कर देगा। अतः सम्मिलित कुटुम्बों में प्रायः बेकार मेम्बरों की संख्या बहुत हो जाती है, जिससे देश की द्रव्योत्पादक शक्ति को बहुत बड़ा धक्का लगता है।

(५) सम्मिलित कुटुम्ब में प्रायः सभी मेम्बरों की दशा अनोखी होती है। यदि बड़ा भाई अच्छा और सीधा है तो वह पैत्रिक सम्पत्ति को अपने परिश्रम से बढ़ाता है और अपने जन्म की बहुत बड़ी कमाई उसीमें लगा देता है। छोटे भाइयों का भी पालन-पोषण करके उन्हें वह समर्थ कर

देता है। परन्तु द्रव्योत्पादन के योग्य होने पर सम्भव है कि वे सारी सम्मिलित सम्पत्ति को बँटा लें; ग्रैार, इस तरह, बेचारे बूढ़े बड़े भाई की जन्म भर की कमाई दबा बैठें, पर अपनी कमाई का एक पैसा भी भी उसे न दें। ऐसे ही यदि बड़ा भाई बेईमान हुआ तो वही प्रायः सारी पैत्रिक सम्पत्ति उड़ा डालता है, अथवा चालाकी से दबा लेता है। ग्रैार बेचारे छोटे भाई जब बालिग़ होते हैं, तब उन्हें ज्ञान होता है कि बड़े भाई साहब की बदौलत एक सम्पन्न कुटुम्ब से वे कँगाल हो गये। यदि सम्मिलित कुटुम्ब की रीति न प्रचलित होती तो नाबालिगों के हिस्से का कोई नियमबद्ध संरक्षक सरकार से नियत हो जाता, ग्रैार उनकी सम्पत्ति इस प्रकार नष्ट न होने पाती। अतः सम्मिलित कुटुम्ब से बड़े ग्रैार छोटे भाई दोनों की असीम हानि सम्भव है।

(६) सम्मिलित कुटुम्ब में मेम्बरों ग्रैार उनके लड़कों में असत्यता की आदत के घुस आने की बहुत बड़ी आशंका रहती है। बालकों में असत्यता इस कारण बहुत घुस आती है कि प्रत्येक बालक का दर्जा भतीजे का होता है। कोई भी उन्हें पुत्र का दर्जा नहीं देता। अतः उन के अपराध बहुत कम क्षमा किये जाते हैं। जितने अपराध बाप क्षमा कर देगा, उतने चचा कभी नहीं क्षमा करेगा। ग्रैार भाइयों के डर से लड़के का पिता भी उसके अपराध नहीं क्षमा कर सकता। अतः जब बालकों को चुचकार कर नहीं, वरन मार कर, उत्तम सिद्धान्त सिखाये जाते हैं, तब उन्हें अपने अवगुण ग्रैार दुष्कर्म साफ़ साफ़ बता देने में बड़ा भय रहता है। इस तरह उनमें झूठ बोलने की आदत पड़ जाती है ग्रैार धीरे धीरे असत्यता से उन्हें स्वाभाविक घृणा नहीं होती। अथवा यों कहिए कि वह उनमें उत्पन्न ही नहीं होने पाती। हमने देखा है कि भाइयों के कुटुम्बों में मेम्बरों के पढ़े लिखे लड़के भी झूठ बोलने में ज़रा भी नहीं हिचकते। इसी तरह प्रायः मेम्बर छिपा छिपा कर अपनी अपनी स्त्री ग्रैार लड़कों को ख़ुद भी द्रव्य दिया करते हैं ग्रैार प्रकट रूप से चट इनकार कर जाते हैं। फिर जो लोग अलग अलग कमाते हैं, उनमें से बहुतेरे कुछ अंश तो सम्मिलित कोष में डाल देते हैं ग्रैार बाक़ी का चुपके चुपके कोलचा करते जाते हैं, अर्थात् उसे अपनेही लिए छिपा कर अलग संचित करते रहते हैं। सारांश यह कि जब तक सभी लोग सुशिक्षित, सत्यप्रिय ग्रैार सत्सिद्धान्तशील न हों तब तक उनमें असत्यता ग्रैार बेईमानी का घुस आना एक स्वाभाविक बात है। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा का यह एक मात्र दोष उसे दोषी ठहराने के लिए बस है। इन्हीं कारणों से बहुत सा सम्पत्ति-पार्थक्य किसीके भी नाम से नहीं होता, जिससे पीछे को इतनी प्रचंड मुक़द्मेबाज़ी होती है कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कोर्ट फ़ीज़, तलबाना, गवाहों का ख़र्च, वकीलों की फ़ीस, अपील, दूसरी अपील, रिविउ, निगरानी, विलायत, इत्यादि, इत्यादि, के रगड़ों में आधी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे मामलों में वही मेम्बर, जो दूसरे मेम्बरों के लड़कों को अपने लड़कों से अधिक समझने का भाव दिखलाता था, झूठे सच्चे गवाह अदालत में पेश करता है ग्रैार उन लोगों के विषय में वह वह अपवाद लगाता है जिन्हें सुन कर दूसरों को लज्जा आती है। हिन्दू समाज में नहीं मालूम कितने मुक़द्मों में सम्मिलित कुटुम्ब का झगड़ा किसी न किसी रूप में पाया जाता है।

(७) इसी सम्मिलित कुटुम्ब में रहने के कारण नहीं मालूम कितनी छोटी बड़ी तकलीफ़ें लोग उठाते हैं; अलग होते समय उनकी बदनामी होती है; ग्रैार अदालत करने में प्रायः कुछ न कुछ धन भी फुँकता है। इसी कारण से लोगों को कितने ही क़ाइनी अधिकार भी नहीं होते जो कि साधारण हिन्दुओं को प्राप्त रहते हैं,—जैसे वसीयत लिखना इत्यादि। जान पड़ता है कि इस छोटे से घनिष्ट मेल के कारणही हम लोग बड़े

बड़े मेल करने के अयोग्य हो जाते हैं। नहीं तो, वही हम लोग जो जन्म भर, नहीं कई पीढ़ियों तक, एकही में रह कर काट देते हैं, क्यों बड़ी बड़ी कम्पनियाँ खड़ी करके कारख़ाने, बैंक, रेलवे, इत्यादि, नहीं चला सकते? पर यह सन्देह मात्र हैं, क्योंकि भारतवर्ष की जिन जातियों में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा नहीं है, वे भी ता कुछ पुरुषार्थ नहीं दिखाती हैं। अस्तु।

फल यह है कि सम्मिलित कुटुम्ब की रीति से अनेक बहुत बड़ी बड़ी हानियाँ संभव हैं, और वास्तव में होती भी हैं। एक तो स्त्रियों का बड़ा अपमान और निरादर होता है और उनमें आपस में प्रायः बहुत अधिक वैमनस्य हो जाता है। बच्चों का भी समुचित लालन-पालन नहीं होता और उनकी दशा अच्छी नहीं रहती। दूसरे, विशेष करके, स्त्रियों की शिकायतें सुनते सुनते मर्दों के कान पक जाते हैं और जी ऊब जाता है। आज ज़ेवर की शिकायत, कल कपड़ों की, परसों दूसरी स्त्रियों से लड़ाई होने की, चौथे दिन बच्चों की सच्ची या झूठी दुर्दशा होने की, पाँचवें दिन और किसी बात की। बस, इसी तरह, जब देखिए, शिकायतही शिकायत की भरमार रहती है। कंगाल घरों में भोजन और सम्पन्न घरों में विशेष करके ज़ेवर की शिकायतों का ता वार पारही नहीं रहता। शिकायतें सुनते सुनते आदमियों के चित्त स्त्रियों से भी खट्टे हो जाते हैं और परस्पर एक दूसरे मेम्बरों में भी मनोमालिन्य बढ़ जाता है। क्योंकि लज्जा के मारे स्त्रियों की शिकायतों का ठीक ठीक अनुसंधान नहीं होने पाता। मर्द अपने अपने जी में कुढ़ा करते हैं और एक दूसरे की सचाई और ईमानदारी पर सन्देह करने लगते हैं, यहां तक कि, धीरे धीरे, आपस में पूरा वैमनस्य हो जाता है। झुठाई की बानि सभों में पड़ जाती है। दग़ाबाज़ी का प्रादुर्भाव हो जाता है। अपने अपने कोलचे मेम्बर लोग संचित करने लगते हैं; और एक समय ऐसा आजाता है जब किसी छोटी सी बात पर वही लोग लड़ पड़ते हैं और लट्ठबाज़ी और अदालतबाज़ी की शरण लेने लगते हैं, जो यह प्रकट किया करते थे कि हम अपने लड़के से भतीजे को अधिक समझते हैं! ऐसे आदमियों को न सम्मिलित रहने में कुछ सुख मिलता है और न जुदा होने के बाद। तीसरे, उन आदमियों को बड़ी कठिनता पड़ती है जिनकी आमदनी अच्छी होती है, पर जिनका कुटुम्ब की सम्पत्ति में बहुत थोड़ा हिस्सा होता है। चौथे, अपनी योग्यतानुसार प्रत्येक मेम्बर काम करने और रुपया कमाने का उपचार नहीं करता। किन्तु कम योग्यतावाले मेम्बर व्यर्थ घमण्डी हो जाते हैं और अपनी किसी प्रकार की ज़िम्मेदारी न जानकर आलस की शरण लेते हैं। पाँचवें, प्रायः सभी मेम्बरों की दशा बहुत नाज़ुक होती है। किसी एक मेम्बर की दग़ाबाज़ी के कारण सबकी बहुत बड़ी हानि होने की सम्भावना रहती है। छठे, लड़कों और प्रायः सभी मेम्बरों को असत्यता और ढकोसलेबाज़ी की आदत पड़ जाती है; और "साझे की खेती को गधा भी नहीं खाता" वाली कहावत के अनुसार सम्मिलित सम्पत्ति की—विशेष करके उसकी, जो स्त्रियों के सिपुर्द रहती है,—बहुत छीज हुआ करती है। सातवें, सम्भव है इसी प्रथाजनित दोषों के कारण हम लोग बड़ी बड़ी कम्पनियां नहीं चला सकते।

इस प्रथा के प्रचलित होने के कारण हम लोग ये और ऐसीही और अनेक प्रकार की हानियां सहन करते हैं, अनेक प्रकार के दुःख झेलते हैं और गृहस्थाश्रम के सुखों को मिट्टी में मिलाते हैं। पर ऐसी हानिकारी रीति का हम परित्याग नहीं करते। हमारा यह तात्पर्य्य कदापि नहीं है कि किसी कुटुम्ब को सम्मिलित दशा में रहनाही न चाहिए। पर यह हम अवश्य कहेंगे कि यह प्रथा सर्वसाधारण और सारे देश के लिए बड़ी हानिकारी है। जिन लोगों का कुटुम्ब उत्तमतापूर्वक चलता हो, उन्हें तब तक एक में रहने से कोई

विशेष हानि नहीं जब तक बाहर भीतर सब तरह सुमति हो; द्वेष, दम्भ, कपट, मनोमालिन्य इत्यादि का नाम न हो; सम्मिलित कुटुम्ब में रहने से किसी मेम्बर की विशेष हानि न होती हो; स्त्रियों और लड़कों में विशेष बिगाड़ न हो; मेम्बर लोग एक दूसरे पर सन्देह न करते हों; सभी लोग अपने अपने योग्यतानुसार काम करते हों; मेम्बर लोग एक दूसरे से सच बोलते और परस्पर विश्वास करते हों; और जो शिकायतें एक दूसरे के विरुद्ध अपनी अपनी स्त्रियों और लड़कों के द्वारा सुनते हों उनका, समय समय पर, एक जगह बैठकर, वे सन्तोषजनक निबटेरा कर लेते हों। तात्पर्य्य यह कि जब तक कुटुम्ब चारुरूप से सञ्चालित हो, तब तक एक में रहना चाहिए; पर ज्योंही बिगाड़ के लेशमात्र भी चिन्ह दिखाई पड़े त्यों ही वज़ादारी के साथ अलग हो जाना ही श्रेष्ठ है।

श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेवविहारी मिश्र।

आख्यायिका।

डाकृर राजेन्द्रलाल मित्र ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है, कि नवद्वीप-नरेश बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन को कहीं यह शुभा हो गया कि उसके पिता का चित्त किसी नवयौवना रमणी पर अनुरक्त है। राज्य के काम काज की तरफ़ बल्लालसेन का ध्यान भी उस समय बहुत कम था। इससे लक्ष्मणसेन का सन्देह और भी दृढ़ हो गया। इस पर उसने अन्योक्तिपूर्ण एक श्लोक अपने पिता को लिखा।

यथा--

शैत्यं नाम गुणस्तवैव सहजः स्वाभाविकी स्वच्छता
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शेन यस्यापरे।
किञ्चान्यत् कथयामि ते स्तुतिपदं यज्जीविनां जीवनं
त्वञ्चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः?

हे जल, आपमें शीतलता का होना तो सहज बात है; स्वच्छता भी आप में स्वाभाविकी है; आपकी पवित्रता की क्या कहना है? आपको छूने ही से और लोग पवित्र हो जाते हैं। कौन कौन से विषय में हम आपकी स्तुति करें? आप तो जीवधारियों के प्रत्यक्ष जीवन हैं। यदि आपही नीच-मार्ग से गमन करेंगे तो आपका रोकनेवाला ही कौन है?

इसका उत्तर बल्लालसेन ने यह भेजा—

तापो नापगतस्तृषा न च कृषा धौता न धूली तनो-
र्न स्वच्छन्दमकारि कन्दकवलः का नाम केलीकथा।
दूरोत्क्षिप्तकरेण हन्त करिणा स्पृष्टा न वा पद्मिनी
प्रारब्धो मधुपैरकारणमहो झङ्कारकोलाहलः॥

शरीर का ताप नहीं गया; प्यास नहीं बुझी; बदन में लगी हुई धूल भी नहीं धुली। केलि, अर्थात् खेलकूद, की बात तो दूर रही, स्वच्छन्दता-पूर्वक कन्द भी खाने को नहीं मिला। और कहां तक कोई कहे, कर को ऊंचा उठाकर करिवर ने पद्मिनी को छुवा तक नहीं। इस हालत में (इन अन्यायी) मधुपों ने बेफ़ायदे झङ्काररूपी कोलाहल मचा रक्खा है! इस पद्य में कई शब्द दो दो अर्थ वाले हैं; और ध्वनि के भीतर ध्वनि है। जवाब ख़ूब है।

पुस्तक-परीक्षा।

पञ्चगीत। कर्त्ता—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार। दाम तीन आने। मिलने का पता पं० जेष्ठाराम मुकुन्दजी, कालबादेवी, बम्बई। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत—ये पाँच गीत बड़ेही मनोहर हैं। उन्हींका यह समश्लोकी अनुवाद हिन्दी में है। मूल श्लोक भी अनुवाद के साथ दिये हुए हैं। अनुवाद की भाषा में बोलचाल की भाषा और ब्रजभाषा दोनों का मिश्रण है। भाषा कुछ क्लिष्ट

हैं और सरस भी कम है। एक आध जगह छन्दो-भङ्ग भी है। यथा—

बिना छपे ग्रन्थ पडे कई हैं
भर्तहरी का अनुवाद भी है।

✽

भोजनविधि। कर्त्ता, नन्हेलाल मुरलीधर, सरस्वतीविलास प्रेस, नरसिंहपुर। दाम ६ आने। यह १२८ पृष्ठ की पुस्तक है। इसमें ३४६ तरह की भोजनविधि का वर्णन है। रोटी, दाल, पूरी, कचौरी, तरकारी, खटाई, मिठाई आदि सबका वर्णन है। अमीर और ग़रीब सबके खाने लायक़ चीज़ों के बनाने की इसमें तरकीब है। भाषा में कहीं कहीं पर दोष है। पुस्तक सस्ती और मतलब की है।

✽

गऊ की नालिश। पण्डित जगतनारायण शर्म्मा की बनाई। धर्म्मामृत प्रेस, गिरगांव, बम्बई से २ आने में प्राप्य। यह नालिश "सृष्टिकर्ता जगदीश्वर की (?) दरबार में भारत की कुदशा पर गऊ" ने की है। पुस्तक पद्य में है। गऊ और "सृष्टिकर्ता" का सवाल-जवाब है। इसमें हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई, पारसी सब से गोरक्षा के लिए प्रार्थना की गई है और भूकम्प का कारण गोरक्षा का अभाव ही बतलाया गया है! पुस्तक की भाषा दोषपूर्ण है। विशेष करके टिप्पणी में जो संस्कृत के प्रमाण दिये गये हैं उनकी दुर्दशा का ठिकाना नहीं है।

✽

स्वदेशवस्तु-प्रचार, नं० १। बाबू हीरालाल-गुप्त कृत। टामसन-कालेज, रुड़की में कर्ता के पास से सवा आने में प्राप्य। इसका विषय इसके नाम ही से ज़ाहिर है। स्वदेशीवस्तु व्यवहार करना इस देशवालों का कर्तव्य है। विलायती खाँड के व्यवहार के प्रतिकूल इसमें अनेक मान्य लोगों की सम्मतियाँ हैं। इसमें पद्य भी कुछ है। पद्य में स्वदेशी वस्तु की महिमा वर्णन की गई है। पद्य की कई सतरें सरस्वती से ले ली गई हैं; पर भूल से उसका नाम देना रह गया है।

✽

स्वदेशबान्धव। इस नाम का एक मासिकपत्र एप्रिल १९०५ से, राजपूत एंग्लो-ओरियंटल प्रेस, आगरा, से निकलता है। इसकी सालाना क़ीमत सिर्फ़ ११ आने है; इसमें डाक महसूल भी शामिल है। इसके हर अङ्क में, छोटे साँचे के १६ पृष्ठ रहते हैं। इसकी भाषा सबके समझने लायक़ होती है। लेख भी इसके कोई कोई ख़ूब उपयोगी होते हैं। इसके अगस्त के अङ्क में "पुस्तक-प्रेम", "स्वदेश-प्रेम" और "कसरत" अच्छे लेख हैं। यह पत्र सस्ता और उपादेय है। यदि स्कूलों के लड़के इसे पढ़ें तो उन्हें इससे बहुत लाभ हो।

✽

अनाथरक्षक। यह "श्रीमद्दयानन्द-अनाथालय, अजमेर, का मासिकपत्र" है। इसे निकलते कोई तीन वर्ष हुए। साल भर इसे लेने से १ रुपया देना पड़ता है। इसके तीसरे भाग का दसवां अङ्क हमारे पास समालोचना के लिए आया है। उसमें अनाथालय और आर्यसमाज से सम्बन्ध रखनेवाले ही लेख और समाचार अधिक हैं। एक लेख इस अङ्क में, जो लण्डन की जीव-जन्तुशाला के विषय में है, बहुत मनोरञ्जक है।